"यह पथ बन्धु था" - एक आलोचनात्मक अध्ययन

(एम. फिल. उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध)

शोध-निर्देशक :

डॉ० केदारनाथ सिंह

शोधछात्रा :

कु० अंशु गुप्ता

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

1991

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110067

दिनांक :

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कु० ऋचा गुप्ता द्वारा प्रस्तुत ''यह पथ बन्धु था' : एक आलोचनात्मक अध्ययन'' शीर्षक लघु शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्व विद्यालय अथवा किसी अन्य विश्व विद्यालय में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है ।

यह लघु शोध प्रबन्ध कु० ऋचा गुप्ता की मौलिक कृति है ।

(डा० केदारनाथ सिंह)
शोध निर्देशक
जवाहरलाल नेहरू विश्व विद्यालय
नई दिल्ली - 110 067

(डा० असलम परवेज)
अध्यक्ष
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - 110 067

GRAM : JAYENU TEL. : 667676, 667557 TELEX : 031-73167 JNU IN

विषय - सूची

'यह पथ बन्धु था' : एक आलोचनात्मक अध्ययन

		पृ०संख्या
(1.) **प्रथम अध्याय**		
	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : विकास के विविध आयाम	1 - 11
(क)	यह पथ बन्धु था' का औपन्यासिक महत्व	12 - 16
(2.) **द्वितीय अध्याय**		
	यह पथ बन्धु था : कथ्य एवं परिवेश	17 - 53
(i)	कथा वस्तु	17 - 29
(ii)	सामाजिक परिवेश	30 - 46
2.1	पारिवारिक विघटन	
2.2	परंपरागत मान्यताएँ और नैतिक मूल्यों का विघटन	
	सामाजिक स्तर पर नैतिक मूल्यों का विघटन	
	राजनीतिक स्तर पर नैतिक मूल्यों का विघटन	
2.3	नारी के प्रति दृष्टिकोण	-
2.4	बदलते प्रेम संदर्भ	-
(iii)	आर्थिक परिवेश	46 - 47
(iv)	राजनीतिक परिवेश	47 - 50
(v)	धार्मिक परिवेश	50 - 53
(3.) **तृतीय अध्याय**		
	'यह पथ बन्धु था' में रागात्मकता और यथार्थबोध	54 - 64
(क)	यह पथ बन्धु था में अकेलेपन और अजनबीपन का अंकन	64 - 70
(4.) **चतुर्थ अध्याय**		
	यह पथ बन्धु था : शिल्प एवं प्रयोग	71 - 86
(5.)	**उपसंहार एवं निष्कर्ष**	87 - 90
	संदर्भ एवं सहायक ग्रंथ	91 - 94

भूमिका

जीवन जड़ नहीं, वह सदैव गतिशील रहता है और जीवन की इसी गतिशीलता को सम्पूर्णता में व्यक्त करने का उपन्यास एक सशक्त माध्यम है। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास जीवन की विविधता और परिवर्तित परिवेश को व्यापक रूप से चित्रित करते हैं। नरेश मेहता के उपन्यास इसके अपवाद नहीं है। उनके उपन्यास 'डूबते मस्तूल', 'यह पथ बन्धु था', 'नदी यशस्वी है', 'प्रथम फाल्गुन' 'दो एकांत' आदि उल्लेखनीय है। नरेश मेहता साहित्य जगत में उपन्यासकार की अपेक्षा एक कवि के रूप में अधिक विख्यात व प्रतिष्ठित है। असल में कवि के रूप में वह साहित्य जगत पर इतने हावी हो गए है कि उनकी औपन्यासिक प्रतिभा पर लोगों का इतना ध्यान ही नहीं जाता और उनके उपन्यास मूल्यांकन के आभाव में अनछुए रह गये है। इसीलिए मेरे इस लघु शोध का उद्देश्य उनकी औपन्यासिक प्रतिभा को रेखांकित करते हुए उनके उपन्यासों का अध्ययन करना रहा है। इस लघु शोध में उनके सब उपन्यासों का अध्ययन संभव नहीं था और न ही उनके उपन्यासों की मात्र चर्चा करना मेरा ध्येय था। इसीलिये इस शोध में उनके एक ही वृहदकाय और बहुचर्चित उपन्यास "यह पथ बन्धु था" का विस्तार पूर्वक आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। इसकी रचना प्रक्रिया ने हिन्दी साहित्य में उपन्यास को एक नवीन गति व आयाम प्रदान किया है। कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर 'नूतन एवं पुरातन के सामंजस्य' के साथ ही इसमें लेखक ने एक व्यक्ति के जीवन-मूल्यों के संदर्भ में समाज का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन* मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में किया है।

यह शोध चार अध्यायों में विभक्त है —

प्रथम अध्याय में स्वाधीनता पश्चात भारत में परिवर्तित परिवेश के परिणाम स्वरूप बदलते मूल्यों की चर्चा की गई है। यह मूल्य जीवन के क्षेत्र में ही नहीं, साहित्य के क्षेत्र में भी बदले, जिसके परिणाम स्वरूप उपन्यासों का परंपरागत ढांचा

* Psyco. Analaysis of the Society

भी बदला और नवीन कथ्य एवं शिल्प का विकास हुआ । स्वातंत्र्योत्तर युग में कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर जो नवीनता लक्षित हुई उसकी चर्चा के साथ स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों का वर्गीकरण भी इस अध्याय में किया गया है । अध्याय के दूसरे हिस्से में आलोच्य उपन्यास के औपन्यासिक महत्व की चर्चा की गई है जो इस शोध की प्रेरणा का एक अन्य कारण भी रहा है ।

दूसरे अध्याय में आलोच्य उपन्यास के कथ्य एवं परिवेश की विस्तृत चर्चा की गई है । उपन्यास की कथावस्तु के साथ कथानक के विकास की स्थितियों का अंकन और उसी के समानान्तर उसकी समीक्षा हुई है । किसी भी साहित्यिक कृति की समीक्षा सर्वप्रथम समाज के परिप्रेक्ष्य में होनी चाहिये । '' उपन्यास में समाज की प्रगति का हर पहलू प्रतिबिंबित होता है x x समाज के भीतर वर्ग और वर्ग का संघर्ष, वर्ग के भीतर कुल और कुल का, कुल में परिवार और परिवार का और अंतोगत्वा परिवार के भीतर व्यक्ति और व्यक्ति का संघर्ष, इन सब पर टिक कर ही उपन्यास दृष्टि विकसित होती रही है ।''[1] इसीलिये इस अध्याय में परिवेश चित्रण के अंतर्गत सामाजिक परिवेश की चर्चा अत्यंत विस्तार पूर्वक की गई है । स्वातंत्र्योत्तर समाज में लक्षित हैनि वलि मूल्य संक्रमण और विघटन को व्यापक परिप्रेक्ष्य में चित्रित करने के साथ ही उपन्यास में चित्रित आर्थिक, राजनीतिक और आंचलिक परिवेश का, इस अध्याय में अध्ययन किया गया है ।

तीसरा अध्याय दो भागों में विभक्त है । पहले भाग में आलोच्य उपन्यास में चित्रित रूमानियत और यथार्थबोध का विवेचन हुआ है और दूसरे में उपन्यास के पात्रों में लक्षित हैनि वलि अकेलेपन और अजनबीपन के बोध का अंकन हुआ है । इस अध्याय में यथार्थ को किसी 'वाद' के भीतर न देखकर उसे 'बोध' के रूप में अंकित किया गया है क्योंकि 'साधारण व्यक्ति की दुख गाथा' हैनि के कारण इसे साधारण व्यक्ति की 'सामान्य अनुभूति' के रूप में ही निरूपित करने का प्रयास

---

1. सर्जना और संदर्भ : अज्ञेय

किया गया है । यथार्थ के बोध को इसमें उपन्यास नायक के जीवन के संघर्ष 'टूटन' व्यर्थतता बोध: अकेलापन और पराजय से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। इस 'बोध' के प्रत्येक सोपान पर उसे जिस कटु यथार्थ की अनुभूति होती है उसे साधारण मनुष्य के यथार्थबोध से जोड़ने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है । इस उपन्यास के पात्रों में लक्षित होने वाली रूमानियत को मनोविज्ञान के धरातल पर सहज प्रवृत्ति के रूप में विवेचित व विश्लेषित किया गया है । अध्याय के दूसरे भाग में जिस अकेलेपन और अजनबीपन की चर्चा की गई है उसे पाश्चात्य प्रभाव न मान कर स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश की उपज सिद्ध करने का प्रयास किया गया है ।

शोध का अंतिम अध्याय शिल्प से संबंधित है । इस अध्याय में आलोच्य उपन्यास के संदर्भ में उपन्यासकार की शिल्पगत नवीनता और प्रयोगधर्मिता का विश्लेषण किया गया है ।

कुल मिलाकर यह शोध नरेश मेहता के इस उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है । इस शोध कार्य के लिये विभिन्न लेखों, ग्रंथों, पत्रिकाओं आदि की सहायता ली गई जिसकी सूची अंत में संकलित है ।

इस लघु शोध को मैंने अपने शोध निर्देशक आदरणीय केदार नाथ सिंह जी के निर्देशन में संपन्न किया है । उनके स्नेहपूर्ण निर्देशन और प्रेरणा ने जहां एक ओर मुझे इस शोध कार्य के लिये प्रेरित किया वहीं दूसरी ओर उनके अद्वितीय संयम और विश्वास के कारण यह शोध संपन्न हो सका । मैं उनकी अत्यंत आभारी हूं । इसके अतिरिक्त मैं अपने सभी अध्यापकों, मित्रों, लेखकों और उन विद्वानों की कृतज्ञ हूं जिनकी पुस्तकों से मुझे इस शोध कार्य में सहायता मिली ।

कु० अंशु गुप्ता
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

प्रथम अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : विकास के विविध आयाम

(क) 'यह पथ बन्धु था' का औपन्यासिक महत्व

प्रथम अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : विकास के विविध आयाम

हिन्दी उपन्यास के गद्यात्मक अभियान में स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। ''किसी भी देश के लिये स्वतंत्रता प्राप्ति मात्र एक घटना न होकर जन साधारण की मुक्ति कामना, संघर्ष एवं सामूहिक चेतना का फल है।''[1] हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम में स्वतंत्रता पश्चात नए दौर की शुरुआत हुई। परिवर्तित परिवेश एवं परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप उपन्यास के कथ्य एवं शिल्प में नवीनता आई, और वह परंपरागत उपदेशात्मकता, कौतुहल रहस्यमयता, मनोरंजन, आदर्शवादिता आदि की प्रवृत्तियों से मुक्त हो गया। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने जीवन के हर पहलू पर दृष्टि डाली और प्रत्येक क्षण के यथार्थ को महत्व दिया। ''स्वाधीनता के बाद का हिन्दी उपन्यास भारतीय जीवन के बहुत से स्तरों और आयामों को अभिव्यक्त करने में सफल हुआ।''[2] स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास दो दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण है – इसमें एक ओर भोगे हुए यथार्थ को स्वर मिला तो दूसरी ओर देश के उपेक्षित अंचलों को महत्व मिला।

कोई भी साहित्य या साहित्यकार अपने देश, काल अथवा परिस्थितियों से अछूता नहीं रह सकता। स्वतंत्रता पश्चात भारतीय परिवेश विसंगतियों, विडम्बनाओं और मोह भंग का था। देश के विभाजन से एकता की नींव ही नहीं हिली थी बल्कि ''अखंड भारत'' का स्वप्न भी चूर-चूर हो गया था। अमानवीयता, अनाचार, अकाल, असंतोष और अकर्मण्यता का ताण्डव जीवन के हर क्षेत्र में हो रहा था। लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश को चित्रित

---

1. आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ – नरेन्द्र मोहन पृ० ।
2. नेमिचन्द्र जैन : अधूरे साक्षात्कार – पृ० 2

करते हुए लिखते हैं कि — '' भारत वर्ष में स्वाधीनता के बाद सारी आस्थाएं, मूल्य-मर्यादाएं शून्यता के प्रवाह में विलीन हो गईं, मोह में डूबा हुआ व्यक्ति भीतर से टूटने लगा और संचित आशाओं की पीड़ा से वह जर्जरित हो उठा। ''[1] '' आत्म प्रवंचना का यह युग मानव मूल्यों के निर्मम विघटन और जीवन व्यापी कटुता, कुंठा को लिये अपनी संपूर्ण प्रवृत्ति, विकृति के साथ हिन्दी उपन्यास में प्रतिबिंबित ... तो हुआ ही उसे रूप और आकार भी देता रहा। ''[2]

स्वातंत्र्योत्तर भारत में व्यक्ति और समाज दोनों ही परिवर्तन और नव निर्माण के एक विशेष दौर से गुजर रहे थे। सामाजिक और वैयक्तिक स्तर पर जहाँ एक ओर विघटन का परिप्रेक्ष्य था वहीं दूसरी ओर नव जागरण के परिणाम स्वरूप लोगों में नवीन चेतना का उदय भी हो रहा था और ज्ञान विज्ञान, कृषि, शिक्षा आदि के क्षेत्र में प्रगति हो रही थी। परिवर्तन के इस दौर और नवीन परिवेश ने स्वातंत्र्योत्तर साहित्य को भी नवीन दिशा प्रदान की और अनास्था और अस्वीकार के साथ ही साहित्य में 'आस्था' और 'स्वीकार' का स्वर भी मुखरित होने लगा। पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित हो भारतीय साहित्यकारों ने नवीन विचारधाराओं का प्रतिपादन किया और साहित्य में आधुनिकता बोध के साथ व्यक्ति और परिवेश केंद्र में स्थापित हो गए। क्योंकि उपन्यास युग सापेक्ष अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है इसलिये यह परिवर्तन उपन्यास में विशेष रूप से लक्षित हुआ। आधुनिकता बोध और सामाजिकता स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की विशिष्टता हो गई। 'प्रेमचन्द' का ''गोदान'' हिन्दी का प्रथम आधुनिक उपन्यास है। यद्यपि यह स्वतंत्रता पूर्व लिखा गया तथापि आधुनिकता की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रेमचंद ऐसे उपन्यासकार थे '' जिनके हाथों हिन्दी उपन्यास की 'कर्मभूमि' ही नहीं बदली उसका 'कायाकल्प' भी हुआ। उन्होंने ही

---

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास -5 पृ० 80
2. 'भाषा' — (लेख-समकालीन हिन्दी उपन्यास से) - पृ० 67

सर्व प्रथम पश्चिम के उपन्यासों में मौजूद इतिहास और उपन्यास के संबंध को पहचाना और हिन्दी उपन्यास को भारतीय जनता के ऐतिहासिक संघर्षों से जोड़ा ।'' । इस तरह उपन्यास की परंपरागत दृष्टि को अस्वीकार का उन्होंने उसे नवीन स्वरूप प्रदान किया ।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में कथानक और चरित्र की परंपरागत धारणा लुप्त हो गई और उसमें परिवेश को महत्व मिला और चरित्र को नया आयाम । इन उपन्यासों में परिवेश का मात्र कोरा अंकन न होकर चरित्र और परिवेश से उत्पन्न टकराहट के तनाव को अभिव्यक्ति मिली । सन् साठ के बाद हिन्दी उपन्यास में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए । मूल्यहीनता, अराजकता, स्वार्थान्धता और अवसाद के आवरणों को भेद कर युवा साहित्यकारों ने युग की समस्त चेतना को आत्मसात् करके मानववादी मूल्यों और आस्थाओं को साहित्य में प्रतिष्ठित करने का बीड़ा उठाया । फलतः उपन्यास का स्वरूप बदला और उपन्यासों में रूपबन्ध को महत्व न देकर व्यक्तित्व की खोज पर बल दिया जाने लगा । '' ये उपन्यास पहले की अपेक्षा अधिक नए रूप में व्यक्ति को प्रतिष्ठा देते हैं । साधारण व्यक्ति में उसके सहज जीवन के साधारण सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, में मानवीयता की खोज करते हैं, इस प्रकार से साधारण की यह महत्ता बल्कि उसी में विशिष्टता की खोज नवीन हिन्दी उपन्यास की एक सार्थक विशेषता है ।''[2] इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास सन् साठ के बाद ज्यों-ज्यों प्रगति के सोपानों को पार करता गया त्यों-त्यों वह सामान्य मनुष्य अर्थात 'साधारण व्यक्ति' के निकट आता गया और वही उपन्यास का प्रमुख पात्र हो गया । उसके अनुभवों से उपन्यास का ढांचा निर्मित हुआ और उसकी अनुभूति से उसकी संवेदना विकसित हुई । इस तरह स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में व्यक्ति की प्रामाणिक अनुभूतियों को महत्व ही नहीं मिला बल्कि सामयिक परिवेश में उसके जटिल यथार्थ को भी चित्रित किया गया । '' मनुष्य के व्यक्तित्व, अस्तित्व

---

1. मैनेजर पांडेय - साहित्य के समाज शास्त्र की भूमिका : पृ० 291.
2. नेमिचन्द्र जैन - अधूरे साक्षात्कार - पृ० 7

तथा उसके जीवन के पूर्णत्व के प्रारम्भ को परिवेश ही नियंत्रित तथा संचालित करता है ।''[1] इसीलिये मनुष्य के इर्द-गिर्द का परिवेश, उसका समाज, रूढ़ियां आस्थाएं, नैतिक मान्यताएं, सामाजिक व्यवस्थाएं आदि सभी इन उपन्यासों में विशेष रूप से चित्रित हुए और उनके प्रति विद्रोह और अस्वीकार का स्वर भी उनमें तीव्रता से मुखरित हुआ । '' स्वाधीनता के बाद का हिन्दी साहित्य मूलतः विस्तारात्मक है । जीवन की गहनता का उसकी समग्रता का कथ्यात्मक वक्तव्य उसमें विरल है ।''[2]

स्वातंत्र्योत्तर युग में व्यक्ति के साथ उसकी 'अस्मिता' का प्रश्न भी उठा । औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप नगरों में भीड़ तो बढ़ती गई किंतु व्यक्ति भीड़ में भी 'अकेला' रहा । अपरिचय और सम्प्रेषण के अभाव में वह अलगाव की स्थिति महसूस करने लगा । निजता की रक्षा और सामाजिकता की चाह ने उसे अकेला और अजनबी बना दिया । '' इस वास्तविक अकेलेपन और अजनबीपन के मूल में अस्तित्ववादी प्रभाव लक्षित होने लगा । यूं तो अकेलेपन और अजनबीपन का बोध प्रेमचंद युग में ही हिन्दी साहित्य में व्यक्त हुआ था लेकिन स्वतंत्रता पश्चात इस आधुनिक 'पलायनवादिता और रिक्तता' की अभिव्यक्ति और तीव्रता से हुई, विशेषकर उपन्यासों में । जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, मुक्तिबोध के उपन्यास इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है ।

परिवर्तित परिवेश और आधुनिकता बोध के कारण स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में नैतिक दृष्टिकोण भी बदला हुआ है । नारी शिक्षा, नारी स्वातंत्र्य और व्यक्ति स्वातंत्र्य के परिणाम स्वरूप इन उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों, दाम्पत्येत्तर संबंधों और प्रेम का बदला हुआ रूप उभरा है ।

---

1. उपन्यास समीक्षा के नए प्रतिमान - डा. बाटे पृ० 103
2. अधूरे साक्षात्कार - पृ० 7

'' इन उपन्यासों में नारी को सतीत्व' और देवीत्व के कटघरों से निकाल कर उसे इन्सान के रूप में देखने समझने का प्रयत्न हुआ है । ''[1] राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई' महेन्द्र भल्ला का ' एक पति के नोट्स अज्ञेय का ' नदी के द्वीप ' और कृष्णा सोबती का ' सूरज मुखी ' अंधेरे के 'इस संदर्भ में उल्लेखनीय उपन्यास हैं । व्यक्ति की सेक्स संबंधी दमित कुंठाएँ और मानसिक द्वन्द्वों का इनमें खुला चित्रण हुआ है । ये उपन्यास 'वर्जना' और ' निषेध की परिधि से परे जीवन के हर पक्ष का नग्न व यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं ।

महानगर की चकाचौंध, नगरीकरण से उत्पन्न समस्याएँ, और महानगरीय परिवेश की यांत्रिकता से ऊबकर जब उपन्यासकार ग्रामीण अंचल की रमणीयता की ओर उन्मुख हुआ तो उपन्यास में आंचलिकता की प्रवृत्ति आई । परिवेश यहाँ भी केन्द्र में ही था किंतु नगरीय नहीं । इन उपन्यासों में स्थानीय चित्रण के साथ लोक भाषा का यथार्थ प्रयोग हुआ । मोटे रूप से स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों को हम सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, समाजवादी आंचलिक और एतिहासिक, इन छह वर्गों में विभक्त कर सकते हैं -

यूँ तो सामाजिक उपन्यास लिखने की परंपरा प्रेमचन्द से ही चली थी किंतु स्वतंत्रता पश्चात सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक स्तर पर विघटन ने स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया और उन्होंने समाज और व्यक्ति के परस्पर संबंध को उपन्यास का विषय बनाया । समाज की पृष्ठभूमि में वैज्ञानिक स्तर पर, राजनीतिक स्तर पर, धार्मिक और नैतिक स्तर पर होने वाले विघटन और मूल्य संक्रमण, का इन उपन्यासों में विशद चित्रण हुआ है । सम्मिलित परिवार की लुप्त होती परंपरागत धारणा और पारिवारिक स्तर पर अलगाव की

---

1. अधूरे साक्षात्कार - पृ0 6

स्थिति का चित्रण, आर्थिक विषमता के कारण समाज में बिगड़ते मानवीय संबंध सामाजिक विसंगतियां, नारी की विडम्बना पूर्ण स्थितियों को इन उपन्यासों में स्वर मिला । स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक उपन्यासों में भगवती चरण वर्मा का 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' 'भूले बिसरे चित्र' 'आखिरी दाव' ऐसे उपन्यास है जिनमें व्यक्ति के संघर्ष के साथ राजनैतिक स्तर पर विघटन के परिवेश को चित्रित किया गया है । अमृत लाल नागर का 'बूंद और समुद्र' तत्कालीन समाज का गतिशील चित्र ही नहीं प्रस्तुत करता बल्कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को महत्व देता है ।

स्वतंत्रता पश्चात सन् साठ तक जो सामाजिक उपन्यास लिखे गए वह ज्यादातर मध्यवर्गीय जीवन की त्रासदियों की गाथा है । यह त्रासदी व्यक्ति के संघर्ष की, अस्मिता की मूल्यों के विघटन की, नारी की विवशता की और परिवर्तित मानवीय संबंधों की है । इस संदर्भ में अज्ञेय का 'नदी के द्वीप' अश्क का 'गिरती दीवारें' धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवां घोड़ा' नागर का 'बूंद और समुद्र' राजेन्द्र यादव का 'उखड़े हुए लोग' कृष्ण बलदेव का 'उसका बचपन' राही राघव का 'कब तक पुकारूं' और यशपाल का 'झूठा सच' उल्लेखनीय है । ये सारे उपन्यास सन् साठ से पूर्व लिखे गए और स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदलते राजनीतिक और सामाजिक परिवेश के साथ व्यक्ति और समाज के बदलाव को चित्रित करते है ।

सन् साठ के बाद के सामाजिक उपन्यास नवीन संवेदना को मुखरित करते है । इन उपन्यासों में विसंगतियों का मात्र चित्रण नहीं है बल्कि अनास्था अराजकता और मूल्यहीनता के प्रति विद्रोह है । सन् साठ के बाद के उपन्यासकारों ने जो भोगा, जो देखा और जो जिया उसे ही व्यक्त किया, इसीलिये ये उपन्यास यथार्थ के अधिक निकट है और आधुनिक संवेदना को अधिक तीव्रता से व्यक्त करते है । साठोत्तरी सामाजिक उपन्यासों में एक ओर सम्प्रदाय भेद है, आर्थिक शोषण है, संबंधहीनता है, जीवन से विरक्ति, परिवेश से असंपृक्ति है, दाम्पत्येतर संबंध है, धार्मिक विसंगति है तो दूसरी ओर इन सब के बीच संघर्षरत व्यक्ति है — साधारण व्यक्ति । अज्ञेय का 'अपने- अपने अजनबी', मोहन राकेश का 'न आने वाला कल', अधेरे बंद कमरे 'अश्क का 'शहर में घूमता आईना', उषा प्रियंवदा का 'रुकोगी नहीं राधिका' ममता कालिया का 'बेघर' जगदम्बा प्रसाद का 'मुर्दाघर' नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' और 'यह पथ बन्धु था' इस संबंध में उल्लेखनीय उपन्यास है । ये सभी उपन्यास समाज और व्यक्ति, व्यक्ति और परिवेश के संघात को प्रस्तुत करते है ।

स्वातंत्र्योत्तर **राजनीतिक** परिवेश भारतवासियों की कल्पना के विपरीत था । जीवन के हर क्षेत्र में राजनीति तो पनप ही रही थी किंतु राजनीति स्वयं अपने क्षेत्र में आदर्शों से च्युत हो गई थी । मोहभंग के साथ प्रजातांत्रिक व्यवस्था के प्रति लोगों का अविश्वास और विद्रोह भी मुखर हो उठा था । सत्य अहिंसा, बंधुत्व की भावना के विपरीत हिंसा असत्य और वैमनस्य का परिवेश सर्वत्र लक्षित हो रहा था । राजनीति इससे अछूती नहीं थी । भ्रष्ट स्वार्थी, सत्तालोलुप अवसरवादी नेताओं के हाथ में राजनीति वीभत्स रूप धारण करने लगी थी । स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास-कारों की दृष्टि से यह बच नहीं सका और उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से इन स्वार्थी, अवसरवादी नेताओं का भांडा फोड़ किया, जन साधारण को राजनीति की रणनीतियों से सचेत कर, उन्हें उनके अधिकारों से अवगत कराया । स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक उपन्यास समकालीन राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार का खुला अध्याय प्रस्तुत करते हैं । राजनीति के नाम पर सर्वहारा के हितों का अपहरण कर उन्हें झूठे आश्वासन देना, सत्ता में आने के लिये भिन्न दाव-पेंच लगाना, चुनाव के नाम पर गरीब अनपढ़ों को ठगना इत्यादि इन राजनीतिक उपन्यासों के विषय रहे हैं । भीष्म साहनी का 'तमस' यशपाल का 'झूठा सच' मन्नु भंडारी का 'महाभोज' गिरिराज किशोर का 'जुगल बंदी' इस संदर्भ में उल्लेखनीय है ।

आंचलिकता स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों की विशिष्टता है । स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने देश के उपेक्षित अंचलों के चित्रण में विशेष रुचि दिखाई । इसका लेखक अंचल विशेष की जिंदगी का भोक्ता होने के कारण उस अंचल की सामूहिक चेतना का, सांस्कृतिक गति-

विधियों का और भौगोलिक परिवेश का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। '' वह उसकी मिट्टी से बड़ी गहराई से जुड़े होने के नाते, प्रत्येक आवाज को, उसकी हर धड़कन को पहचानता है और महसूस करता है कि सच्चे अनुभवों का साहित्य लिखने के लिये उसे उसी अंचल जीवन के पास जाना होगा। ''[1] हिन्दी में आंचलिक उपन्यासों का अभ्युदय नागार्जुन के उपन्यास 'बलचनमा' (1952) से माना जाता है किंतु हिन्दी का सर्वाधिक चर्चित आंचलिक उपन्यास 'रेणु' का 'मैला आंचल' है। इसके अतिरिक्त उनका "परती परीकथा" भी अत्यंत लोक प्रिय है। हिमांशु श्रीवास्तव का 'नदी फिर बह चली' भैरव प्रसाद गुप्त का 'गंगा मैया', राही मासूम रजा का 'आधागांव' शिव प्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी' राम दरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ' आदि उल्लेखनीय आंचलिक उपन्यास है जिनमें स्वातंत्र्योत्तर भारत के अंचल विशेष का सजीव चित्रण हुआ है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखने की परंपरा स्वतंत्रता पूर्व विकसित हो चुकी थी। फ्रायड युंग, एडलर आदि मनोविश्लेषण शास्त्रियों का प्रभाव हिन्दी कथा साहित्य पर 1947 पूर्व ही अज्ञेय, जैनेंद्र, इलाचन्द्र जोशी आदि की कृतियों में लक्षित होने लगा था किंतु स्वतंत्रता पश्चात् ज्यों-ज्यों उपन्यासों में व्यक्तित्व रसायन और व्यक्ति सत्य की खोज 'की प्रवृत्ति पुष्ट होती गई त्यों-त्यों मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की परंपरा भी समृद्ध हुई। जैनेन्द्र ने हिन्दी में मनो वैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात किया। स्वतंत्रता पूर्व 'सुनीता' 'त्यागपत्र' कल्याणी उनके प्रसिद्ध उपन्यास है। 1953 में उनका 'सुखदा' 'विवर्त' और 'व्यतीत' प्रकाशित हुए। इन सब में व्यक्ति के अंतर्मन की गुत्थियों का विश्लेषकर नारी के अचेतन में चल रहे पातिव्रत्य और कामभावना के बीच संघर्ष को चित्रित किया गया है। जोशी जी का 'जिप्सी' 'जहाज का पंछी' 'ऋतु चक्र' 'प्रेत और छाया' भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

---

1. आधुनिक उपन्यास - राम दरश मिश्र पृ० 10

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अज्ञेय कृत 'शेखर: एक जीवनी' एक उल्लेखनीय उपन्यास है। इसमें वैयक्तिक मनोविज्ञान का अध्ययन व विश्लेषण का प्रयास ही नहीं हुआ बल्कि ''इस उपन्यास में मनुष्य की अंतश्चेतना में जीवन के आरंभ में ही उदित होकर विकसित होने वाली भय यौन-वासना तथा अहं का क्रमबद्ध विकास दिखाया गया है।''[1] विषय और शैली की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट उपन्यास है। यद्यपि यह स्वतंत्रता पूर्व लिखा गया तथापि अपनी विशिष्टता के कारण एक उल्लेखनीय कृति है। नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल', 'दो एकांत', 'यह पथ बन्धु था' राजेन्द्र यादव का 'अनदेखे अनजाने पुल', कमलेश्वर का 'तीसरा आदमी'' डा० देवराज का 'अजय की डायरी' 'पथ की खोज' निर्मल वर्मा का 'वे दिन' मनोविज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपन्यास है। इनमें व्यक्ति को केंद्र में रखकर, मानव मन के गूढ़ रहस्यों को परत दर परत उघाड़ कर विश्लेषित किया गया है। ये उपन्यास फ्रायड, युंग, एडलर से विशेष रूप से प्रभावित है। फ्रायड से प्रभावित उपन्यासों में काम वासना की प्रधानता है और उन्हीं की पृष्ठभूमि में मनुष्य के अंतर्मन का मंथन हुआ है और उसकी जटिल मनो ग्रंथियों को सुलझाने का प्रयास है। एडलर से प्रभावित उपन्यास अहं प्रधान है।

स्वतंत्रता पश्चात् **व्यक्तिवादी** चिंतन पर आधारित उपन्यासों में कुछ उपन्यास अस्तित्ववाद' से प्रेरित होकर लिखे गए। इन उपन्यासों में संत्रास, कुंठा, भय, मृत्युबोध के साथ अजनबीपन और परायेपन का बोध भी संलग्न था। ये उपन्यास कामू, काफ्का, सार्त्र के चिंतन से प्रभावित थे और हिन्दी में अस्तित्ववादी उपन्यासों के रूप में विख्यात है।

---

1. डा० गणेशन - पृ० ९९ – हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन

मार्क्सवाद से प्रभावित और साम्यवादी चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों ने स्वतंत्रता पश्चात 'गोदान ' के वर्ग संघर्ष को आगे बढ़ाते हुए उपन्यास में 'द्वंदात्मक भौतिकवाद ' की प्रतिष्ठा की । नागार्जुन, यशपाल , रांगेय राघव इस धारा के प्रमुख उपन्यासकार है । इनके उपन्यासों में पूंजीवादी और सामंती व्यवस्था के प्रति विद्रोह व्यक्त हुआ है । नागार्जुन का ' दुःखमोचन' बाबा बटेसर नाथ ' वरुण के बेटे' उल्लेखनीय है । यशपाल इस धारा के शीर्षस्थ उपन्यास कार है उनके उपन्यास में वर्ग संघर्ष के साथ स्वतंत्रता पश्चात नारी के शोषण के बदले रूपों की भी चर्चा है । 'मनुष्य के रूप' और ' झूठा सच ' उनके प्रसिद्ध उपन्यास है ।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने व्यक्ति और परिवेश में उलझा रहने के बावजूद भी इतिहास को विस्मृत नहीं किया । 'मृगनयनी' 'पुनर्नवा', दिव्या सुहाग के नुपुर' 'वयं रक्षामः' ' वैशाली की नगर वधु', 'एकदा नैमिषारण्ये' आदि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है । इन ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से अतीत का पुनरावलोकन ही नहीं हुआ बल्कि वर्तमान की समस्याओं को अतीत के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास भी हुआ है । स्वतंत्रता पश्चात् सर्वत्र मूल्यहीनता और विघटन का परिवेश व्याप्त था । ऐसे में इन उपन्यास कारों ने स्वस्थ जीवन मूल्यों की स्थापना के लिये इतिहास और कल्पना के प्रतिसहयोग से उत्कृष्ट उपन्यासों की सृष्टि की । स्वातंत्र्योत्तर ऐतिहासिक उपन्यास अतीत की घटनाओं से संबंधित होते हुए भी आधुनिक जीवन के सामाजिक यथार्थ से जुड़े हुए है । रांगेय राघव का ' मुर्दों का टीला' प्रतिदान ' अंधेरे के जुगनू' यशपाल का ' दिव्या ' नरेन्द्र कोहली का ' दीक्षा ' 'अवसर' 'युद्ध' इत्यादि प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है ।

स्वाधीनता पश्चात उपन्यास के कथ्य के साथ शिल्प में भी परिवर्तन हुआ ।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने अपनी अनुभूतियों को संप्रेषित करने के लिये विविध प्रयोगों द्वारा शैलीगत नवीनता का परिचय दिया । आत्म कथात्मक शैली, फ्लैश बैक शैली, डायरी शैली, संस्मरण शैली इत्यादि इसी का प्रमाण है । उपन्यास के रूप बंध में तो परिवर्तन हुआ ही उसके साथ उसकी भाषा में भी नवीनता आई । जीवन की छोटी-छोटी अनगिनत अनुभूतियों को आम भाषा में भी प्रस्तुत किया जाने लगा । भाषा अधिक स्वभाविक और यथार्थ-मयी हो उठी । उपन्यास में भी काव्य के समान प्रतीकों का, बिंबों आदि का प्रयोग होने लगा है ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास प्रगति के सोपानों को पार करता हुआ आज जिस रूप में प्रतिष्ठित है उतनी ख्याति शायद ही किसी विधा ने अर्जित की है । जीवन के विविध जटिल अनुभवों को आबद्धकर नवीन ढंग से संप्रेषित करने में स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है । कथ्य, शिल्प और शैली के स्तर पर निरंतर तराशे जाने की प्रक्रिया में वह निखरता जा रहा है । इसमें संदेह नहीं कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास आज प्रगति के पथ पर तेजी से अग्रसर हो रहा है । समकालीन जीवन के विस्तार को समग्रता में आबद्ध करने, जीवन के अनछुए पहलुओं को अनावृत करने व यथार्थ के विविध आयामों को अभिव्यक्त करने का वह एक सशक्त माध्यम सिद्ध हुआ है । उसने ' मस्तिष्क और मन से प्रारम्भ होकर वर्ग संघर्ष के व्यापक स्वरूपों तक अपनी पहुँच दिखाई है।[1] वह मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास शील आयामों को उद्घाटित करने में ही सफल नहीं सिद्ध हुआ है बल्कि स्वस्थ जीवन मूल्यों की स्थापना में भी अपना योगदान दे रहा है । कमलेश्वर का ' डाक बंगला ' भीष्म साहनी का ' कड़ियां ' शानी का ' काला जल ' प्रभाकर माचवे का ' द्वाभा ' आदि इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास है । '' कहा जा सकता है कि आज हिन्दी उपन्यास एक अनिर्दिष्ट सामाजिक विकास और चरित्र निर्देश की भूमि से आगे बढ़कर, विशेषज्ञता के क्षेत्र में आ गया है और हमें अधिक वैज्ञानिक और 'यथार्थ' कलाकृतियां मिलने वाली है । ''[2]

xxxx0xxxxx

1. नया साहित्य नए प्रश्न - पृ0 217
2. नया साहित्य नए प्रश्न - पृ0 201

क) 'यह पथ बन्धु था' का औपन्यासिक महत्व :-

हिन्दी साहित्य में नरेश मेहता का रचनाकाल छायावादी कविता का प्रारंभ काल और राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में नवीन मोड़ का समय है। नरेश मेहता मूलतः एक प्रयोगवादी कवि के रूप में अधिक प्रख्यात है तथापि इनके उपन्यास भी कम विख्यात नहीं है। 'डूबते मस्तूल'-1954 'धूमकेतु एक श्रुति' 1962, 'दो एकान्त'-1964, 'नदी यशस्वी है'-1964, 'यह पथ बन्धु था' -1962 उनके प्रसिद्ध उपन्यास है। 'डूबते मस्तूल' और 'यह पथ बन्धु था' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके उपन्यासों में गतिशील सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में व्यक्ति के अंतर्मन के उद्घाटन का प्रयास हुआ है। प्रगतिवादियों के समान उनके उपन्यासों में भी जीवन के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण देखा जा सकता है। प्रयोगवादी कवि होने के कारण इनके उपन्यासों की शैली जहाँ एक ओर गद्यकाव्य सी सरस है वहीं दूसरी ओर काव्य के समान उसमें अनछुए नवीन प्रतीकों व बिंबों का प्रयोग भी दर्शनीय है।

आलोच्य उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' 1962 में प्रकाशित मेहता जी का तीसरा, सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास है। इस उपन्यास की विशेषता इस बात से है कि इसमें स्वातंत्र्योत्तर युग के बदलते प्रतिमानों का बीज निहित है कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से यह अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस वृहद् काय उपन्यास में व्यक्ति के जीवन के अनेकविध आयामों को यथार्थ रूप में उद्घाटित ही नहीं किया गया बल्कि निरंतर घातप्रतिघात झेलने के पश्चात मानवीय स्तर पर मनुष्य की अदम्य जिजीविषा और अटूट आस्था को कायम रखने में लेखक का किंचित प्रयास भी लक्षित होता है। मानवीय स्तर पर मनुष्य की आस्था ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है। आस्था समाप्त हो जाने पर मनुष्य की जिजीविषा भी खत्म हो जाती है। उपन्यास नायक श्रीधर को शाश्वत मूल्यों में, जीवन में और परिवर्तन में आस्था थी इसीलिये वह निरंतर पराजित हो कर भी अपराजित रहता

है । वर्तमान को भोग सकने की क्षमता और भविष्य के प्रति आस्था उसे 'साधारण' से 'विशिष्ट' बना देता है । '' श्रीधर का श्रीधर ही बने रहना उसके व्यक्तित्व को भी रुपायित करता है और उसमें निहित सामाजिक आस्था को भी ।''[1]

मेहताजी के इस उपन्यास का महत्व इस बात से भी है कि यह अपने युग के क्रोड़ में विकसित हुआ है और कथानायक के आयावरी जिंदगी के अंतर्गत समाज के दस्तावेज को प्रस्तुत करता है । एक व्यक्ति की कथा होते हुए भी यह समाज की कथा है । आम आदमी की ' आदमीयत ' और '' मनुष्य के सदस्य के पराजय '' की गाथा है । श्रीधर अपने युग को आत्मसात करता हुआ अपनी कहानी द्वारा तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आर्थिक परिवेश को साकार करता है । मूल्यों की अवमानना, विघटन के परिप्रेक्ष्य मानवीयता के हनन के प्रति लेखक का खेद श्रीधर के माध्यम से व्यक्त हुआ है और उनका उद्देश्य इन सब स्थितियों से अवगत करा मनुष्य को सचेत करना है ।

इस उपन्यास के विषय में लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय का कहना है कि ''यह नरेश मेहता का बहुचर्चित और प्रमुख उपन्यास माना जाता है जिसमें व्यक्ति के साथ सामाजिक संदर्भों का समन्वय आधुनिक संचेतना और मानवीय संवेदनशीलता का आधुनिक जीवन के अंतर्विरोधों सहित मार्मिक चित्रण है ।'[2] डा० गोयान ने इसे गतिशील समाज का मार्मिक चित्र स्वीकारा है । नेमिचन्द्र जैन इसे उपन्यास के क्षेत्र में एक नए शिखर का सूचक मानते हुए लिखते हैं कि '' उसमें एक लम्बे सामाजिक और साहित्यिक अभिव्यक्ति के युग को स्थापित करने का और परंपरा और समकालीनता के बीच एक नई समन्विति एक नए संतुलन के खोज का प्रयास है । इसमें अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों पर एक ऐसा आंतरिक सामंजस्य है जो हिन्दी के कथासाहित्य में एक नए आयाम का सूचक है ''[3]

---

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास - पृ० 158
2. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ० 116
3. अधूरे साक्षात्कार - पृ० 54

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर लक्षित होने वाली नवीनता इस उपन्यास में भी है । इस उपन्यास की आधुनिकता इस बात में है कि यह कृति एक सघन यथार्थ की अभिव्यक्ति रचनात्मक स्तर पर करती है । इसमें एक साधारण आदर्शवादी व्यक्ति के जीवन का यथार्थ चित्रित है जो आधुनिक युग के साधारण व्यक्ति से मेल खाता है । स्वयं लेखक के शब्दों में ''यह एक निपट साधारण जन की दुख गाथा है ।''[1] बीसवीं श0पूर्वार्ध के सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं के संदर्भ में जीवन की ट्रेजडी द्वारा जो सत्य उद्घाटित हुआ है वह एक भावप्रवण व्यक्ति की असमर्थतता द्योतित करता है ।''[2] रामदरश मिश्र ने इसे मध्य वर्ग के टूटते हुए संवेदनशील व्यक्ति और उसके मानसिक उद्वेलन की अनुभूति गाथा कहा है । उनके अनुसार ''यह उपन्यास अनुभवों का उपन्यास है – मध्यवर्ग के एक सामान्य व्यक्ति के अनुभवों का इतिहास । लेकिन इस व्यक्ति का अनुभव केवल अपने भीतर से ही नहीं गुजरता है बल्कि विराट परिवेश के बीच से गुजरता है और समाज के भी ।''

यह एक व्यक्ति परक उपन्यास है और इसमें चित्रित 'साधारण आदमी' अर्थात उपन्यास नायक श्रीधर लघु मानव का प्रतिरूप ही प्रतीत होता है । उसका संघर्ष इस बात का द्योतक है कि '' उसकी लघुता वह अंश है जो हर विनाश के बाद भी बच रहती है, हर झंझावात के बाद भी सीधा रहती है और हर रिक्तता के बाद भी क्रियाशील होकर पुनर्निर्माण में लग जाती है ।[3] इसीलिये वह आजीवन पराजय-टूटन झेल कर भी सृजन में प्रवृत्त होता है । तमाम यंत्रणाओं के बीच भी अपनी संवेदना को सुरक्षित रखता है । '' वह जो जीता है, जो भोगता है, जो क्षण-क्षण उसके व्यक्तित्व में परिव्याप्त है– उसी को अभिव्यक्ति देता है ।''[4]

---

1. भूमिका से - 'यह पथ बंधु था '
2. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ0
3. नए प्रतिमान, पुराने निकष - पृ 96
4. नये प्रतिमान: पुराने निकष - पृ0 99.

उपन्यास में जहां-जहां पात्रों की मानसिक चेतना अकेलेपन, अजनबीपन अथवा परायेपन से ग्रस्त है वह आधुनिक परिवेश के परिणामस्वरूप ही है । कुछ आलोचकों ने इस उपन्यास में आधुनिकता की संवेदना को निजी धरातल पर स्वीकारते हुए अकेलेपन व अजनबीपन के बोध को ही इसका मूल स्वर माना है । वार्ष्णेय जी का कहना है कि ''आज जहां आधुनिकता की चकाचौंध बने हुए है और सार्त्र, कामू, काफ्का हमारी अधिकांश नए प्रतिभाशाली लेखकों के आदर्श बने हुए है वहां नरेश मेहता अपने इस उपन्यास में सांस्कृतिक परम्पराओं और गौरव निष्ठा की रक्षा कर सके है ।''[1] और यह सत्य भी है क्योंकि इसमें अकेलेपन-परायेपन अथवा अजनबीपन के बोध को भारतीय दृष्टि व अनुभव के परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया गया है । आधुनिक परिवेश में ''मूल्य और सार्थकता का बहुत बड़ा स्वप्न लेकर चलने वाला व्यक्ति अंत में अपने को चारों ओर से हारा हुआ अकेला और अजनबी पाता है । वास्तव में भारत में अकेलेपन व अजनबीपन का यही स्वरूप है ।''[2]

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में व्यक्ति और परिवेश केन्द्र में आ गए थे । इस उपन्यास में उल्लेखनीय यह है कि परिवेश के दबाव के बावजूद इसके सभी पात्र अपनी संवेदना को सुरक्षित रखते है । इसके सभी पात्र भावुक, संवेदनशील और कुछ सीमा तक रूमानियत से ग्रस्त है । यंत्रणाओं के बीच अपनी मानवीयता को वह विकृत नहीं होने देते । गुणी, सरो, इन्दु, श्रीधर और मालिनी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है । डा० विवेकीराय का कहना है कि ''इस उपन्यास की सबसे बड़ी सार्थकता है कि कृति में निहित संवेदना निरंतर विकसित होगी और नए-नए आयाम सामने आएगे । यदि कोई रचनाकार श्रीधर, गुणी, सरो, सासू मां, कीर्तनिया जी जैसे पात्रों को पुनः रचना चाहेगा तो उसे नरेश मेहता के अनुभव से कई गुना बड़ा अनुभव अर्जित करना होगा । उतना बड़ा अनुभव जुटा पाना सदियों का काम है ।''[3]

---

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ० 117
2. हिन्दी उपन्यास: एक अंतर्यात्रा पृ०
3. आधुनिक हिन्दी उपन्यास - पृ० 167

शिल्प की दृष्टि से भी नरेश मेहता का यह उपन्यास अन्य उपन्यासों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है । इस उपन्यास में लेखक ने शिल्प के दो विरोधी छोरों के सामंजस्य को प्रस्तुत किया है । इसका परिपार्श्व आंचलिक है किंतु प्रधानता चरित्र की है, परिवेश की नहीं । इसका शिल्प अत्यंत निखरा हुआ और संयमित है । नेमिचन्द्र जैन के शब्दों में ''इसकी शिल्प की विशिष्टता इसकी सरलता में है, किसी तीखी प्रयोगात्मकता में नहीं ।''[1] वर्णात्मक, काव्यात्मक, विश्लेषणात्मक शैली के साथ इसमें ' फ्लैश बैक ' पद्धति का प्रयोग भी हुआ है ।

कुल मिला कर इस कृति का महत्व इस बात से सिद्ध हो चुका है कि यह '' एक ऐसी रचना अवश्य है जो इतना अंतराल पार करने के बाद भी यह उज्ज्वल ही हुई धुंधली नहीं पड़ी । ''[2]

****

---

1. अधूरे साक्षात्कार - पृ0 52
2. आधुनिक हिन्दी उपन्यास - पृ0 155

द्वितीय अध्याय

यह पथ बन्धु था - कथ्य एवं परिवेश

1. कथावस्तु की समीक्षा
2. सामाजिक परिवेश
3. आर्थिक परिवेश
4. राजनीतिक परिवेश
5. आंचलिक परिवेश

''यह पथ बन्धु था'' — कथ्य एवं परिवेश

हिन्दी उपन्यास के यथार्थोन्मुख अभियान में नरेश मेहता का उपन्यास ''यह पथ बन्धु था'' एक उल्लेखनीय कृति है। यह उपन्यास बीसवीं शo के पूर्वार्ध के सामाजिक जीवन मूल्यों एवं मान्यताओं पर आधारित है।''[1] इस उपन्यास में मध्य वर्गीय जीवन की पृष्ठभूमि में सामाजिक और वैयक्तिक दायरों में होने वाले मूल्य गत विघटन और व्यापक मोहभंग का जीवंत चित्रण हुआ है। युग विशेष के सामाजिक और राजनैतिक बदलाव को स्वर देने के कारण इस उपन्यास के पात्र एक प्रकार की ऐतिहासिक प्रक्रिया से गुजरते हैं और अविस्मरणीय चरित्र बन जाते हैं।'

इस उपन्यास में मालवा के एक छोटे से कस्बे के अत्यंत साधारण व्यक्ति श्रीधर ठाकुर की कथा है जो आजीवन अपनी आदर्शवादिता और सिद्धान्तवादिता के कारण जीवन पथ पर पराजित हो टूटता जाता है किंतु कायरों की भाँति समझौता नहीं करता। लेखक ने भूमिका में लिखा है कि ''इतिहास के समान उन्होंने किसी सफल, क्रूर अथवा महामुखा को नहीं बल्कि एक 'साधारण अव्यक्ति' को इस उपन्यास का नायक बना'', उसे यथार्थ से जूझता दिखाकर व्यक्तित्व प्रदान किया है। श्रीधर मालवा के स्कूल में एक साधारण सा शिक्षक है पर ''अपनी घोर साधारणता में भी उसके भीतर आत्मसम्मान है, गहरी नैतिकता है, चाहे साधारण ही सही किंही आदर्शों में आस्था है।''[2] श्रीधर ने अपने राज्य मालवा का एक इतिहास लिखा था जिसपर विभागीय अधिकारियों को आपत्ति थी क्योंकि

---

1. नरेश मेहता: भूमिका 'यह पथ बन्धु था'
2. नेमिचन्द्र जैन : अधूरे साक्षात्कार पृ0 43

उनके अनुसार उसमें राज्य के शासकों का सम्मान पूर्वक उल्लेख नहीं किया गया था। अधिकारियों द्वारा संशोधन किए जाने की मांग को श्रीधर अस्वीकार कर देते है क्योंकि उनका तर्क था कि इतिहास में ऐसे संबोधनों का प्रयोग नहीं होता है जैसा अधिकारी चाहते है। अधिकारियों द्वारा अनुचित दबाव डाले जाने पर भी श्रीधर झुकते नहीं और बहुत सोच विचार के बाद वे अपने सिद्धान्तों की आहुति देने की अपेक्षा अपनी नौकरी से त्यागपत्र देने का निश्चय करते है। वृद्ध माता पिता की विवशता, बड़े भाई भाभी की दासता सहती उसकी पत्नी सरस्वती और कमासुत भाईयों की स्वार्थ परता, इन सब से श्रीधर अनभिज्ञ नहीं थे और वह यह भी अच्छी तरह जानते थे कि उनके नौकरी छोड़ देने पर उनके परिवार की स्थिति और विपन्न हो जाएगी किन्तु अपने आदर्शों के साथ समझौता वे किसी भी कीमत पर नहीं कर सकते थे, इसीलिये जीवन में पग-पग पर वे टूटते गए लेकिन झुके नहीं।

नौकरी से त्यागपत्र दे देने के पश्चात् श्रीधर स्थिर नहीं रह पाते और एक रात वे भी विवेकानन्द की भांति, मानवीय आदर्शों की खोज में बिना किसी को बताए निकल पड़ते है। कुछ आलोचकों ने श्रीधर को ऐसा करने पर पलायन वादी कहा है। "श्रीधर का गृह त्याग पलायन की कोटि में भले आता हो परन्तु जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण मानववादी समाजोन्मुखी व रचनात्मक है।"[1] जो लोग उसे ऐसा करने पर संघर्ष भीरु, संकल्प हीन, कायर आदि मानते है उनके लिये विचारणीय है कि जिस व्यक्ति ने आगे चलकर अकेले ही साहित्यिक पत्र का संपादन किया, साप्ताहिक आदि का बीड़ा उठाया, जानबूझ कर किशन व रत्ना जैसे क्रांतिकारियों के संपर्क

---

1. गिरिराज किशोर : आधुनिक हिन्दी उपन्यास पृ० 159

में रहा जिसने ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह जैसे शक्तिशाली अवसरवादी नेता का पर्दाफाश करने का साहस किया —— क्या वह व्यक्ति वास्तव में संघर्ष भीरु था ? संकल्प हीन था ? मिथ्या आदर्शवादी या कायर था ? '' फिर जिस दुर्दांत एकांत में खड़े हो कर वह समग्र मानवता को अपने में अनुभव करता है, वहाँ केवल असंग व्यक्ति ही खड़ा हो सकता है और असंग व्यक्ति कायर कभी नहीं होता ।[1]

घर छोड़ने के बाद श्रीधर कुछ दिन उज्जैन में भटकने के पश्चात इन्दौर पहुँचे जहाँ उनकी मुलाकात गांधीवादी नेता पुस्तके साहब, क्रांतिकारी युवक किशन व युवती रत्ना और प्रौढ़ वेश्या मालिनी से होती है । इतने लोगों के संपर्क में रहकर भी श्रीधर कुछ सार्थक कर सकने का निश्चय नहीं कर पाते क्योंकि निर्णय- अनिर्णय संशय, अनास्था और अविश्वास ने उनकी चेतना को आक्रांत कर रखा था । वह कुछ करना चाह कर भी हमेशा चिंतित व भयभीत रहते कि उनके घर वाले उन्हें पहचान कर वापिस न ले जाएं । ऐसा नहीं कि श्रीधर कुछ कर सकने में सक्षम नहीं है किंतु यही भय उनकी सक्षमता पर प्रश्न चिन्ह लगा देता है । भय तथा परिवार और देश प्रेम के द्वन्द से ग्रस्त हो वे कुछ करने का निर्णय नहीं ले पाते । अनिर्णय की स्थिति में वे कुछ भी सार्थक नहीं कर पाते । कुछ भी सार्थक न कर पाने के कारण व्यक्ति में निरर्थकता बोध की स्थिति उत्पन्न होती है । निरर्थकता का बोध व्यक्तित्व को तोड़ देता है और टूटा व्यक्तित्व ही अंत में पराजित व्यक्तित्व का पर्याय बन जाता है । वस्तुतः यही स्थिति श्रीधर के साथ भी है ।"श्रीधर को अपने निरुद्देश्यता और अर्थहीनता की प्रतीति से अपने घर की याद आती है ।

---

1. नरेश मेहता : आधुनिक हिन्दी उपन्यास : पृ . 154

वह अपने क्रमशः टूटने को स्पष्ट देख रहा था । वह अपना मिट्टी से उखड़ी जड़ था जो न गमलों में पनप पा रहा था न अन्य स्थान पर"[1] किंतु इतने के बाद भी श्रीधर में कुछ सार्थक करने की उत्कट अभिलाषा है । राष्ट्र के प्रति प्रेम उसे आगे चलकर प्रेरित भी करता है । ''उसमें स्वदेश प्रेम है, किंतु स्वदेश प्रेम के रास्ते में उसे धक्का देकर और गिराकर वे लोग आगे बढ़ जाते हैं जो सुविधासम्पन्न, तिकड़मी, पाखंडी और चोर हैं ।''[2] श्रीधर गांधीवादी और क्रान्तिकारी दोनों आन्दोलनों से जुड़ता है और दोनों के सिलसिले में जेल भी जाता है किंतु इन सब का पुरस्कार उसे जीवन व्यापी निराशा और पराजय के रूप में ही मिलता है । जेल में ही श्रीधर का परिचय ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह से होता है जो समाज की नजरों में कांग्रेस के प्रतिष्ठित कार्यकर्ता है पर वास्तव में अवसरवादी व पाखंडी है, जो देश सेवा की आड़ में अपने स्वार्थों की पूर्ति करते हैं । जेल से छूटने के बाद श्रीधर ऐसे भ्रष्ट, स्वार्थी नेता का पर्दाफाश करने का निर्णय करते हैं किंतु वहां भी उनके हत्कंडों के कारण असफल ही रहते हैं ।

अपने उद्देश्यों में असफल, अनिर्णय, जेल व प्रयोग में अपना सारा जीवन व्यर्थ गंवा कर निराश, हताश व पराजित हो जब श्रीधर भटक रहे थे तो अचानक ही उनकी मुलाकात इन्दु दीदी से होती है। यह प्रसंग कुछ नाटकीय अवश्य प्रतीत होता है किंतु यह भी विचारणीय है कि अगर श्रीधर इन्दु दीदी की प्रेरणा से घर न लौटते तो शायद वे आजीवन ऐसे ही भटकते रहते । श्रीधर के जीवन में इन्दु दीदी का स्थान

---

1. यह पथ बंधु था - पृ0 412
2. विवेकी राय : हिन्दी उपन्यास : उत्तरशती की उपलब्धियाँ - पृ० 142

कथाकार ने कथानायक के पच्चीस वर्ष पश्चात घर लौटने का समाचार देकर पाठकों के मन में कौतुहल की सृष्टि की है। पाठक सहज रूप से सोचने के लिये बाध्य हो जाता है कि जीवन के पच्चीस वर्ष श्रीधर ने कहां व कैसे बिताए तथा पच्चीस वर्ष पूर्व उन्होंने घर क्यों छोड़ा ?

कथानक को गति प्रदान करने के लिये लेखक ने आत्म विश्लेषण शैली द्वारा कथानायक श्रीधर की विगत पच्चीस वर्षों की उपलब्धियों का विश्लेषण करवाया है। श्रीधर पच्चीस वर्ष पश्चात जब घर लौटते हैं तो उन्हें अपनी व्यर्थतता का आभास ही नहीं होता वह यह भी जान चुके हैं कि '' साधनहीन व्यक्ति के आदर्श शक्ति नहीं बल्कि विवशता होती है।[1] '' मूल्य तथा सार्थकता का बहुत बड़ा स्वप्न लेकर चलने वाला व्यक्ति अपने को अंत में चारों ओर से हारा हुआ अकेला और अजनबी पाता है। स्वाधीन भारत में इस टूटते हुए ईमानदार मध्य वर्गीय व्यक्ति की व्यथा अटूट है।''[2] युग जीवन के इसी कटु सत्य को लेखक ने श्रीधर के माध्यम से उभारा है।

उपन्यास के 'शेष पथ' नामक अध्याय में जीवन की व्यर्थतता का इतना कटु बोध है कि श्रीधर स्वयं अपनी पत्नी से कहना चाहते हैं कि — '' उनका पुरुषार्थ नपुंसक का पुरुषार्थ था और जिन आदर्शों को वह पुस्तकों में पढ़कर लोगों के बीच गया था वे सब सड़े हुये थे।''[3] पच्चीस वर्ष। एक संपूर्ण जीवन की आहुति देने के पश्चात उनकी अग्नि सुलग रही थी। जिन अस्त्रों को लेकर जीवन में वे लड़े थे, उनकी व्यर्थता के वे स्वयं साक्षी थे। तभी वे अपनी पत्नी से कहते हैं —

---

1. 'यह पथ बन्धु था' – पृ० 595.
2. आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि – डॉ० रामदरश मिश्र : पृ० १२
3. 'यह पथ बन्धु था' – पृ० 576

अत्यंत महत्वपूर्ण व आदरणीय है । बचपन में प्राप्त इन्दु दीदी का निर्विकार प्रेम ही श्रीधर का वह संबल था जिसे लेकर वह अपने सिद्धान्तों पर अडिग था । जिन आलोचकों का यह मानना है कि इन्दु के संपर्क ने श्रीधर को स्वप्नशील, भावुक बनाया तथा इन्दु दीदी से अगर वे न मिले होते तो ऐसे न होते, कुछ हद तक यह आरोप ठीक प्रतीत होता है लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि श्रीधर जैसे पात्रों के माध्यम से लेखक ने मानवीय आदर्शों का चरम रूप दर्शाना चाहा है और यह इन्दु जैसी पात्रा के अभाव में संभव ही नहीं था ।

उपन्यास के अंतिम चरण में श्रीधर के घर लौटने के पश्चात की कथा है । जीवन के पराजय बेला में इन्दु द्वारा समझाये जाने पर श्रीधर घर की सुखद कल्पना कर घर लौटते हैं किंतु अपनी कल्पना के विपरीत घर की दशा देखकर वे अत्यंत दुःखी होते हैं । उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि उनकी अनुपस्थिति में उनके मकान के चार हिस्से हो जाएंगे, सब भाई अलग हो जाएंगे, उनके माता-पिता की मृत्यु हो गई होगी और उनकी पत्नी यक्ष्मा की शिकार हो अंततः प्राण त्याग देगी और वह पुनः जीवन में एकाकी हो जाएंगे ।

आलोच्य उपन्यास चार भागों में विभक्त है — सूत्र पथ, पूर्व पथ शेष पथ व उत्तर पथ । सूत्र पथ में कथानायक के जीवन की प्रमुख घटनाओं को कौतूहल वर्धक संकेतों द्वारा बुना गया है तथा अगले तीन अध्याय उसी के विस्तार रूप में प्रस्तुत किये गए हैं । कथाकार ने स्मृति अनुप्रकाशी शैली द्वारा कथानायक को अत्यंत भावाकुल कर विगत की घटनाओं का स्मरण कराया है । कथाकार ने इसमें जीवन को स्मृति के धरातल पर पकड़ने का प्रयास किया है । उसी स्मृतिविलोकन द्वारा कथा आगे बढ़ी है ।

TH-3965
DISS
O,152,3,N3,M,2:9
152N1
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY LIBRARY

''हमने तुमने पुस्तकें पढ़कर अपनी टपकती छतों को, टपकने से कैसा रोका जाय यह नहीं सीखा । जीवन को पढ़ने वाला यह मारवाड़ी है, जिसने तुम्हारी बगल में यह कोठी बनवाई है । और तुम्हारी जेठ ने कोई पुस्तक नहीं पढ़ी इसीलिये वे सफल और सुखी हैं ।''[1]

राष्ट्र का इतिहास लिखने के पश्चात जिन मानवीय आदर्शों के परीक्षण के लिये पच्चीस वर्ष पूर्व उन्होंने हाथ छोड़ा था, पच्चीस वर्ष पश्चात उसी परीक्षण के परिणाम स्वरूप उन्होंने मानव का इतिहास लिखने का निश्चय किया जिसकी पहली पंक्ति थी —'' मनुष्य युद्ध का पर्याय है ।'' उनका इस नतीजे पर पहुँचना जहाँ एक ओर उनके यथार्थ बोध का सूचक है वहीं दूसरी ओर उनके दृष्टि विस्तार का भी सूचक है । जिस समय ओधार मनुष्यता का इतिहास लिखने का संकल्प करते हैं उस समय वह ''सामान्य पात्र या चरित्र न रह कर संघर्ष करती हुई संपूर्ण मानवीय चेतना के वैष्णव प्रतीक बन जाते हैं ।'' [2]

वस्तुतः मनुष्य का इतिहास लिखने का जो दबाव वे अनुभव करते हैं उसके पीछे कहीं न कहीं यही कारण है कि '' वह इतिहास के मुर्दा अतीत को सामान्य मनुष्य के जीवित अतीत से जोड़ना चाहते हैं।[3] इतिहास साक्षी है कि युद्ध मानव जाति का इतिहास रहा है । ओधार जब मानव जाति का इतिहास लिखने बैठते हैं तो वे लिखते हैं ——

xxx x '' युद्ध हमारी रक्त मांस मज्जा का अनिवार्य, अविभाज्य अंग है । लड़ना प्राकृतिक है । ''

---

1. 'यह पथ बन्धु था' — पृ0 576
2. ' नरेश मेहता : हिन्दी उपन्यास : पृष्ठ- 154
3. ' गिरिराज किशोर : आधुनिक हिन्दी उपन्यास - पृ- 156

कुछ आलोचक इस प्रकार के अंत को अनावश्यक, अनर्गल मानते हैं। किंतु यह अंश अनावश्यक या आरोपित नहीं है क्योंकि इसमें कथा नायक के समस्त जीवन का सार निहित है। इसे पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीधर भी अपने समस्त जीवनानुभावों से अंत में इतिहास के समान यह निष्कर्ष निकालते हैं कि व्यक्ति मानस में निरंतर एक युद्ध वृत्ति विद्यमान रहती है — सत् - असत्, कथनी- करनी, यथार्थ-आदर्श जीवन का व्याख्येय-अव्याख्येय, इन सब से वह मानसिक स्तर पर निरंतर लड़ता रहता और जीवन में उसकी सफलता - असफलता का मापदंड उसके द्वारा अपनाएँ साधनों पर निर्भर करता है। आदर्श, धर्म, नीति आदि साधन हैं।

मनुष्य जब युद्ध करता है तो उसका ध्यान साध्य पर केंद्रित हो जाने के कारण साधन (अर्थात धर्म, नीति, आदर्श आदि) का महत्व नहीं रह जाता किंतु श्रीधर जैसे योद्धा जो साध्य के साथ-2 साधन के प्रति भी सचेत रहते हैं इस भौतिक युग में असफल होते हैं। कथाकार ने श्रीधर को 'मध्यवर्गीय युधिष्ठिर' कहा है और वे श्रीधर की तुलना युधिष्ठिर से करते हुए कहते हैं कि महाभारत का युद्ध युधिष्ठिर जैसे व्यक्ति द्वारा नहीं जीता गया बल्कि कृष्ण और अर्जुन जैसे '' किसी भी नीति का पालन करने वाली नीति'' अपनाने वाले व्यक्तियों द्वारा जीता गया। वस्तुतः लेखक जब ऐसा कहते हैं तो ऐसा ध्वनित होता है कि मानव जाति को वह जीवन रूपी युद्ध में सफल होने के लिये कृष्ण और अर्जुन का रास्ता अपनाने को कह रहे हैं। महाभारत के पात्रों के प्रति अपने विचारों को व्यक्त करने के मोह में उन्होंने अनजाने में ही स्थिति को उलट दिया है और एक विरोधाभास उत्पन्न कर दिया है। क्योंकि युधिष्ठिर ने तो अंत में असत्य से समझौता करके युद्ध जीत लिया था किंतु

श्रीधर जिसे वे '' मध्य वर्गीय युधिष्ठिर '' कहते है न तो अंत तक समझौता करता है न अपने आदर्शों को ही छोड़ता है । प्रश्न उठता है कि कथानायक को ''साधारण'' कहते हुए क्या वे उसे अतिमानवीय गरिमा प्रदान करना चाहते है ? वस्तुत: यह सब लेखक द्वारा अनायास ही अपने कथानायक के प्रति अतिशय भावुकता के कारण हो गया है । महाभारत प्रसंग की अवतारणा में उनका मुख्य उद्देश्य तत्कालीन समाज में हुए नैतिक विघटन को दर्शाना रहा है ।

समस्त उपन्यास का कथानक आदर्श की नींव पर खड़ा है किंतु श्रीधर का अंत में यह सोचना कि — ''सब आदर्श सड़े हुए है और आदर्शों का पुल्लमा पहली चोट में उतर जाता है '' तत्कालीन समाज में आम आदमी की मानसिकता की ओर संकेत करता है । आलोचक गिरीराज किशोर का कहना है कि ,'' लेखक का श्रीधर के द्वारा यह सोचवाना श्रीधर की अपनी चारित्रिकता को छोटा कर देता है और इस उपन्यास के आधार को खोखला कर देता है ।''[1] किंतु श्रीधर की चारित्रिकता तो तब छोटी होती जब वह सोचने के अतिरिक्त व्यवहारिक जीवन में उसपर अमल भी करता । वह तो अंतिम क्षण तक मूल्यों की अराजकता और जीवन की निरर्थकता के प्रति आत्मसमर्पण नहीं करता । निरंतर टूटता जाता है असफलता झेलता जाता है किंतु झुकता नहीं । वस्तुत: उसका ऐसा सोचना तत्कालीन समाज में लक्षित होने वाली नैतिकता के ह्रास के प्रति उसकी विक्षुब्धता को ही व्यक्त करता है और फिर सोचना तो प्राकृतिक है । व्यक्ति किसी भी पक्ष को सोचने के लिये स्वतंत्र है ।

आधुनिक

1. हिन्दी उपन्यास उत्तरशक्ति की उपलब्धियाँ - डा० विवेकी राय : पृ० 165

''यह पथ बन्धु था'' के कथानायक के विषय में आलोचक नेमिचन्द्र जैन जो उपन्यास में कहीं 'विस्फोट', 'विक्षोभ' या 'टकराहट' नहीं देखते का कहना है कि '' यह पथ बन्धु था'' में प्रक्षेपित समस्त जीवन में निरीहता, निष्क्रियता और आंतरिक गति का अभाव है, कि जीवन की अदम्यता का, उसकी अजस्र गतिमानता का उसके उद्वेलन का कोई चिह्न नहीं मिलता।[1] गिरीराज किशोर दूसरी ओर इस उपन्यास की संघर्ष धारा को 'सच्चा' और 'खरा' मानते हुए कहते है कि — ''पूरा चित्त बावजूद सामंतवादी तादात्म्य के सामन्य आदमी के उद्वेलन से ही उपजा है।[2] वस्तुतः नेमिचन्द्र जैन ने जो बात उठाई है उसके विषय में यह तर्क दिया जा सकता है कि संघर्ष की भाषा नारों की और विस्फोट की ही नहीं होती और आधार कोई क्रांतिकारी भी नहीं है कि नारों और फतवों की भाषा से कथानक में विस्फोट उत्पन्न करें। वह तो लेखक के अनुसार ''क्रांतिदर्शी'' है। और क्रांतिदर्शी की भाषा मौन या ठण्डी हुआ करती है। '' लेनिन क्रांतिकारी '' था और गांधी ' क्रांतिदर्शी '। क्रांतिकारी समाज की परिधि से चलकर सत्ता के केंद्र में पहुंचता है और सत्ता पर अधिकार करता है, जबकि इसके विपरीत क्रांतिदर्शी सत्ता के केंद्र से आरम्भ कर समाज की परिधि की ओर बढ़ता है। वस्तुतः एक में अपने को संकुचित किए जाने की प्रक्रिया है तो दूसरे में अपने को उत्तरोत्तर उन्मुक्त किए जाने की। इसीलिये क्रांतिकारी एक दिन सत्ताधारी बन जाता है और क्रांतिदर्शी विचार पुरुष बन जाता है।[3]

---

1. अधूरे साक्षात्कार - पृ० 48
2. आधुनिक हिन्दी उपन्यास : पृ० 165
3. नरेश मेहता : आधुनिक हिन्दी उपन्यास, पृ० 154

भौतिक सफलता की दृष्टि से श्रीधर भले ही असफल चरित्र प्रतीत हो, किंतु सार्थकता की दृष्टि से वह सफल चरित्र है जो अपने कस्बे के छोटे से परिवृत्त से निकल कर विशाल जन जीवन के संसर्ग में आता है। ''इस सिद्धान्तवादी युवक की बुनावट में कथाकार ने बहुत सी जटिल परिस्थितियों को बुन दिया है, वे सब परिस्थितियां इतनी विषम हैं कि उससे टकराकर श्रीधर का अल्हड़ और रोमानी व्यक्तित्व खण्ड-खण्ड होता प्रतीत होता है।''[1] वस्तुतः उसके चरित्रांकन में कथाकार ने यदि उसकी असफलताओं को तीव्रता से उभारा है तो इसलिये कि उसकी मानवीयता का चरम उत्कर्ष स्वयमेव उभर आए।

इस उपन्यास में कथाकार ने एक व्यक्ति की जीवन यात्रा को विविध आयामों में समाज के विस्तृत फलक पर चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। कथानक की वृहदता के कारण इसमें कुछ दुर्बलताएँ भी आ गई हैं जो मुख्य कथा प्रवाह में बाधा न उत्पन्न करने के कारण नगण्य हैं। उपन्यास के पूर्वार्ध में कथानक मंद गति से बढ़ता है अनेक अनावश्यक विस्तार लिये हुए है। जैसे वेश्या मालिनी की कथा जिसे उपन्यास की मुख्य कथा से निकाल भी दिया जाय तो उपन्यास को कोई क्षति नहीं पहुँचेगी क्योंकि मूल कथा सूत्र/भाव सूत्र के साथ उसकी कोई अनिवार्य संगति नहीं है। उपन्यास के 'उत्तर पथ' में इतने अंतराल/बाद इन्दु दीदी का अकस्मात मिलना अस्वभाविक ही नहीं नाटकीय भी प्रतीत होता है। इन्दु का बालक श्रीधर को लिखा गया पत्र भी आलोचना का विषय है। यह ठीक है कि वह इन्दु की विक्षिप्त मनः स्थिति का द्योतक है किंतु दस वर्षीय अबोध बालक को लिखने में उसकी कोई संगति नहीं बैठती। बालक श्रीधर का इन्दु से

---

1. नेमिचन्द्र जैन : अधूरे साक्षात्कार

विवाह करने की बात सोचना बाल्यावस्था जन्य आकर्षण माना जा सकता है किंतु किशन जो कमल से प्रेम विवाह करने का निश्चय कर चुका है, जिसके लिये कमलमेधर से भागने का निश्चय कर लिया है, उस किशन का अचानक मातृतुल्य भाभी से विवाह का प्रस्ताव कर बैठना उसकी समझ के दिवालिएपन को ही सूचित करता है ।

गुणी के विवाह में श्रीधर के अभिन्न मित्र एवं परिवार के हितचिंतक पेमन बाबू एकदम दिखाई नहीं पड़ते । पेमन बाबू की पगली पत्नी का वर्णन भी अनावश्यक प्रतीत होता है ।

उपन्यास में 'सूत्र पथ' व 'पूर्वपथ' की घटनाएँ सुनियोजित हैं किंतु ज्यों-ज्यों कथा 'उत्तर' से 'शेष पथ' की ओर अग्रसर होती है घटनाओं का क्रम टूटने लगता है और पाठकों की अपनी स्मरण शक्ति पर जोर डालना पड़ता है ।

इसमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं में भी काल संबंधी त्रुटियाँ हैं । पृष्ठ 214 पर किशन श्रीधर से कहता है —
''मैं कहता हूँ श्रीधर बाबू, मुझे गांधी बाबा का रास्ता कुछ पसंद नहीं । एक नया प्रयोग किया जाने वाला है, सत्याग्रह ।।'' ''इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि श्रीधर का इन्दौर पहुँचने का समय सन् 1919 के आस पास है । पृष्ठ 260 पर 'रौलिट एक्ट' के विरुद्ध 'सत्याग्रह आन्दोलन' और 'नमक कानून भंग' करने की घटना एक साथ दिखाई गई है । 'रौलिट एक्ट' के विरुद्ध 'सत्याग्रह' 1919 की घटना है जबकि 'नमक कानून भंग' 'सविनय अवज्ञा' आन्दोलन के अंतर्गत 1930 की घटना है ।

पृष्ठ 443 में लेखक ने जलियाँ वाला बाग कांड को रौलिट एक्ट से पहले

बताया है । वे कहते हैं कि " रौलिट एक्ट के विरुद्ध पूरे देश में सत्याग्रह की बातें हो रही थी अमृतसर में जलियांवाला हत्याकांड पिछले बरस हो गया था ।" अर्थात 1919 'रौलिट एक्ट' के एक वर्ष पूर्व 1918 में जलियांवाला हत्याकांड बताते हैं जबकि जलियांवाला हत्याकांड 13 अप्रैल को रौलिट एक्ट के पारित हो जाने के पश्चात की घटना है । रौलिट एक्ट फरवरी 1919 में पारित हुआ था ।

परिवेश को साकार करने के लिये तत्कालीन बनारस के और अनेक ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों के वर्णन में लेखक ने कई पृष्ठ खर्च किए हैं, लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि एक पर्यटक 'गाईड मैप' से देखकर बनारस के मुहल्लों के नाम गिना रहा है । शिव प्रसाद सिंह की 'गली आगे मुड़ती है' जैसी तन्मयता और विश्वसनीयता उसमें नहीं है ।

निष्कर्षतः इन कतिपय त्रुटियों के बावजूद भी यह एक ऐसा उपन्यास है जिसमें एक ओर प्रेमानुभूतियों की शीतल सरिता प्रवाहित हो रही है तो दूसरी ओर क्रान्ति की चिंगारी भी सुलग रही है, इसमें जहाँ एक ओर प्राचीन परंपरा एवं रूढ़ियों के विध्वंस का स्वर है, वहीं दूसरी ओर नवीन समाज की रचना का स्वर भी मुखरित है, अगर अंग्रेज शोषकों से पीड़ित वर्ग एक ओर क्रन्दन कर रहा है, तो दूसरी ओर अन्याय, असमानता को अपने सशक्त बाहु बल से समाप्त कर देने का संकल्प भी है । इसमें मानवता प्रेम है, देश प्रेम है और भागवत प्रेम है । इस प्रकार जीवन की बहुआयामिता इस अकेले उपन्यास में देखी जा सकती है और इसकी सार्थकता इसी में है कि इसकी संवेदना निरंतर विकसित होगी और नए-नए आयाम सामने लाएगी ।

--

सामाजिक परिवेश :

(1) पारिवारिक विघटन

(2) नैतिक मूल्यों और परंपरागत मान्यताओं का विघटन -

- सामाजिक स्तर पर नैतिक मूल्यों का विघटन
- राजनीतिक स्तर पर नैतिक मूल्यों का विघटन

(3) नारी - समाज और लेखक का दृष्टिकोण

(4) बदलते प्रेम संदर्भ

प्रत्येक प्रतिभावान महान लेखक अपने सामाजिक परिवेश की उपज होता है और वह युगीन चेतना को मुखरित करता है। '' तत्कालीन परिस्थितियाँ; साहित्यिक, सामाजिक आर्थिक और धार्मिक मान्यताएँ, लेखक की वैयक्तिक अभिरुचियों के अनुसार ही साहित्य में समाज के प्रतिरूप, उसकी समस्याओं का विश्लेषण और उसकी आशाओं और अभिलाषाओं का प्रदर्शन मिलता है ।''[1]

उपर्युक्त वर्णित कथा-सूत्र से यह स्पष्ट है कि इस उपन्यास में मूलतः व्यक्ति की जीवन यात्रा को ही उसके विभिन्न आयामों में चित्रित किया गया है।'' यह व्यक्ति विभिन्न सूत्रों से अपने परिवेश से जुड़ा हुआ है, वह उसकी उपज भी है और उसको जाने-अनजाने न्यूनाधिक मात्रा में प्रभावित भी करता है ।''[2] श्रीधर का जीवन अपने परिवेश

---

1. डॉ० गणेशन : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : पृ० 190
2. विवेक के रंग - नेमिचन्द्र जैन

से बाहर से भले ही कटा हुआ प्रतीत हो किंतु भीतर से जुड़े होने के कारण ही उसके व्यक्तित्व की रचना कलात्मक होने की गवाही देती है इस उपन्यास में श्रीधर के व्यक्तित्व को उसके आंतरिक गठन और उसकी परिणति को उसके परिवेश के विभिन्न सूत्रों के साथ जोड़ कर रखा गया है। '' मूल्यों से निरपेक्ष रहने वाली या उन्हें झटक कर तोड़ सकने वाली दृष्टि इसमें नहीं है। जीवन स्थितियों के गति के समानान्तर यहां श्रीधर और सरो के माध्यम से जीवन मूल्य और मान्यताओं को धीरे-धीरे टूटता दिखलाया है।''[1] 'स्वाधीन भारत में इस टूटते हुए ईमानदार मध्यवर्गीय व्यक्ति की व्यथा अटूट है। श्रीधर की टूटने की कथा परिवार और समाज के टूटने की कथा बनती चलती है[2] और श्रीधर के संदर्भ में यदि एक ओर बदलते मानवीय संबंध, नैतिक मूल्य व मान्यताएँ, राजनीतिक, साहित्यिक सामाजिक संस्थाएँ धर्म, प्रेम आदि का बदलता स्वरूप उभर कर आता है तो उसकी पत्नी सरो के संदर्भ में समाज के विस्तृत फलक पर पारिवारिक विसंगतियों और नारी की विडम्बना पूर्ण स्थिति को आंका जा सकता है।

1) पारिवारिक विघटन :

प्रत्येक नवीन मूल्य एवं धारणा सामाजिक संघटनों को प्रभावित करती हुई सामाजिक परिवर्तन का कारण बनती है। औद्योगीकरण और उसके फलस्वरूप मध्य वर्ग के उदय तथा संयुक्त परिवार के विघटन ने जीवन की सहजता, सरलता को संश्लिष्ट और जटिल बना दिया। देश की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप व्यक्ति बृहत्तर समाज की ओर बढ़ने लगा। बृहत्तर समाज से लघुतर समाज की ओर

---

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास की भूमिका : डा० नरेन्द्र मोहन
2. आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना स्वदृष्टि : राम दरश मिश्र : पृ०12।

उन्मुक्त व्यक्ति ने आर्थिक परिवार को व्यक्तित्व विकास के लिये अधिक सुविधाजनक पाया और सम्मिलित परिवार की परंपरागत धारणा से वह विलग हो गया । आलोच्य उपन्यास में श्रीनाथ ठाकुर परिवार के बिखरने की कथा में सम्मिलित परिवार के विघटन की कथा निहित है । परिवार और समाज की बदलती परिस्थितियों के कारण संयुक्त परिवार की नींव हिली । आलोच्य उपन्यास में श्रीनाथ ठाकुर के दोनों बेटे श्रीमोहन और श्री वल्लभ आर्थिक कारणों से अलग हो जाते हैं ।

संयुक्त परिवार में जहाँ पिता को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था वहीं आर्थिक स्तर भेद के कारण परिवार का मुखिया भी बदल जाता है । श्रीधर अपनी माँ से कहता है — '' जिसके पास पैसा होता है वही घर का मालिक होता है '' वस्तुतः संपूर्ण उपन्यास में आर्थिक वाद्यचक्र ही संयुक्त परिवार के विघटन का मूल कारण है । आर्थिक रूप से अधिक संपन्न होने के कारण ही श्रीमोहन की पत्नी सरो पर अत्याचार करती है । समाज का शोषक और शोषित वर्ग इस उपन्यास में एक ही परिवार में दिखाई देता है ।

लड़ाई-झगड़ा, खींचा-तानी, बदला-ग्लानि, सब मिलकर ठाकुर परिवार का वातावरण इस कदर दम घोंटू बना देती है कि '' कोई किसी से ज्यादा बोलता ही नहीं था, सबको देख ऐसा ही लगता कि यदि भूलकर भी इन्हें छेड़ दिया तो या तो ये लोग काट खाएँगे या चीख पड़ेंगे या इनकी दुःख पाती मात्र कठोर पाथरी दृष्टि आपको, आपकी हड्डियों तक को बस घूरने लगेगी और आपको भी अपने जैसा बना लेगी । '' ।

---

1. 'यह पथ बंधु था' - पृ० 516

ऐसी स्थिति में संयुक्त परिवार में सौहार्द्र भावना की कल्पना भी नहीं की जा सकती । घुटन और दुर्दशा से भरा ठाकुर परिवार का वह वातावरण '' जहाँ सब के भीतर घुटन समा गई थी, जहाँ सब अपने अपने ढंग से या तो बीमार थे या रोगी थे, या उपेक्षित थे । जहाँ सिर्फ वे रह गए थे जिनकी सामाजिक उपयोगिता समाप्त हो चुकी थी'' भला सम्मिलित परिवार को कैसे बनाए रख सकते थे ? पारिवारिक विघटन वहाँ सहज व स्वभाविक ही था । और इस विघटन के पश्चात '' ठाकुर घर की संपन्नता दो नालियों में बह कर चली गई थी और मूल स्रोत स्थान में न केवल कीचड़ ही रह गया था बल्कि घिनौनी दुर्गंध भी आने लगी थी ।''[1] नेमिचन्द्र जैन ठाकुर परिवार के विघटन की ओर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं ——

'' भारतीय पारिवारिक जीवन की विशृंखलता, जर्जरता, विकृति और अमानवीयता के ऐसे कारुणिक चित्र हिन्दी में बहुत कम है । इस उपन्यास में पारिवारिक जीवन के चित्र में निर्मम यथार्थ परकता जितनी है उतनी ही घनिष्ट परिचय की आत्मीयता और वास्तविक विशुद्ध करुणा भी xxxx इसमें स्पष्ट ही परिवार और उसके विघटन के परिप्रेक्ष्य में सहज मानव आचरण और उसके मूल्यों की विडम्बना निहित है''[2] और इस विघटन में एक तीखी, दर्द की अनुभूति है ।

2) नैतिक मूल्यों एवं परंपरागत मान्यताओं का विघटन :

नैतिक अवधारणाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ मानवीय जीवन की परिस्थितियों से अद्भुत होती है और समूचे समाज के आचरण एवं चिंतन की सामान्य प्रवृत्तियाँ

---

1. 'यह पथ बंधु था' - पृ० 405
2. अधूरी साक्षात्कार - नेमि जैन - पृ० 46

इसी से नियंत्रित होती है । ''सभ्यता के विकास के साथ जिन आचार-व्यवहार के मापदंडों को विकास मिला वही कालांतर में नैतिक मूल्य बने ।''[1] '' मूल्य आरोपित नहीं होते । वे या तो परंपरागत संस्कारों के भीतर से उपलब्ध होकर मनुष्य के अस्तित्व के अंग बन जाते हैं या फिर नई परिस्थितियों और पूर्व प्रचलित परंपरा के संघर्ष से मनुष्य के मन में नए रूप में जन्म लेते हैं । मूल्यों की कलम नहीं लगाई जाती, वह राष्ट्रीय परम्परा की जमीन में स्वतः उगते और विकसित होते हैं ''[2] आधुनिक औपन्यासिक कृतियों में मूल्य विघटन, मूल्य संक्रान्ति, मूल्य शून्यता, मूल्य विहीनता और मूल्य निरपेक्षता की बात जो बार-बार दुहराई जा रही है, वह बाह्य जगत में राजनीतिक विडम्बनाओं, आर्थिक विसंगतियों और सामाजिक विषमताओं के रूप में दिखाई देती है और व्यक्ति के आत्मिक स्तर पर कुंठा, भय, संत्रास, अलगाव, आध्यात्मिक खालीपन के रूप में । ''[3] नरेश मेहता के इस उपन्यास में नैतिक मूल्यों का विघटन व्यापक रूप से चित्रित है । इसमें चित्रित विघटन के परिप्रेक्ष्य में सहज मानव आचरण और उसके मूल्यों की विडंबना निहित है । आलोच्य उपन्यास में मूल्यों के विघटन को दो स्तरों पर देखा जा सकता है :—

(1) सामाजिक स्तर पर नैतिक मूल्यों का विघटन
(2) राजनीतिक स्तर पर नैतिक मूल्यों का विघटन

(1) **सामाजिक स्तर पर नैतिक मूल्यों का विघटन :**

भारतीय परंपरा में नैतिकता का अंकुश ही सामाजिक आचरण व व्यवस्था को संयमित करता है । नैतिकता ही युग धर्म बन कर मानवीय मूल्यों का संरक्षण करती है । आलोच्य उपन्यास में किर्तनियाँ ठाकुर परिवार

---

1. साइंस आफ एथिक्स - ले. ली स्टीफन
2. प्रयोगवाद और नई कविता - शंभुनाथ सिंह
3. नए उपन्यास की भूमिका - देवेन्द्र इस्सर

के बिखरने की कथा के समानान्तर ही पात्रों में नैतिकता का ह्रास भी देखा जा सकता है। ठाकुर परिवार में भाई-भाई, सास-बहू, देवरानी जिठानी, पिता-पुत्र के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध समाप्त हो गए हैं क्योंकि उनमें पारिवारिक स्तर पर नैतिकता समाप्त हो गई है। श्रीमोहन की पत्नी वृद्ध सास-ससुर का सम्मान करना तो दूर उनसे सीधे मुँह बात भी नहीं करती और तेरा मेरा करते-करते अपने चूल्हा-वर्तन अलग करके पारिवारिक एकता को भी भंग कर देती है। पुत्र भी पिता की ओर से कर्तव्य विमुख हो गए हैं। श्रीमोहन अपनी पुत्री कांता के विवाह की सूचना न तो पिता को देना आवश्यक समझता है न ही इस विषय में उनसे राय लेना। माता-पिता की उपेक्षा कर उन्हें "दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंकता है।" अपनी नैतिकता से वह इस हद तक गिर गया है कि अपनी बीमार भाभी के प्रति उसे कोई सहानुभूति नहीं है और न ही अपनी पत्नी को उसके साथ दुर्व्यवहार करने से रोकता है। जिस माता-पिता ने उसे इस काबिल बनाया कि वह कमा सके, उनकी बुढ़ौती बिगाड़कर उनपर एहसान जता उन्हें बार-बार अपमानित करता है। अपनी बीबी द्वारा भड़काए जाने पर अपने विवेक को जैसे वह हाँक देता है और पिता के रहते ही मकान में हिस्से का तकाजा करता है। नैतिकता का पतन उसमें इस हद तक देखा जा सकता है कि उसके विषय में यह पंक्तियाँ सहज ही स्मरण हो आती हैं ——

> "लोहित पिता को घर से निकाल दिया
> जनमन करुणा की माँ को हंकाल दिया
> स्वार्थों के टेरियर कुत्तों को पाल लिया।"[1]

---

1. 'अँधेरे में' - मुक्तिबोध

नैतिक धरातल पर विघटन की प्रक्रिया के लिये सामाजिक परिस्थितियां भी उत्तरदायी है। सिरश्तेदार श्रीमान अपने पद का लाभ उठाकर रिश्वत के रूप में आभूषण, रूपये आदि से अपने ससुराल वालों का पेट भरते हैं। पुश्तैनी मंदिरों की पूजा की जो माफी की जमीन थी उसे भी हड़प लेते हैं। दूसरी ओर उसकी पत्नी भी कम नहीं। अपने ही परिवार की बेटी गुनी की जिंदगी नरक कर देती है। गुनी दहेज की बलिवेदी पर बली चढ़ा दी जाती है। गुनी की कथा से यह स्पष्ट है कि समाज में ऐसे नीच व्यक्ति भी हैं जो पैसे के लोभ में अपनी पुत्रवधु की जान के ग्राहक बन जाते हैं।

समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के नैतिक पतन की ओर संकेत करते हुए विशन कहता है ——
" गोमुखी में बाघ नख छिपाए इन भक्त जनों ने हर श्रद्धालु नारी को वेश्या पद प्रदान किया और हर पुरुष को दास बनाया। "[2] मूल्यों के विघटन के परिप्रेक्ष्य में नेमिचन्द्र जैन ने इस उपन्यास में श्रीधर और सरो की ट्रेजडी को सामान्य जीवन मूल्यों की ट्रेजडी कहा है। श्रीधर के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि आज की दुनिया में अपने प्रति सहज व सच्चा होना जीवन संघर्ष के लिये अपर्याप्त ही नहीं बल्कि एक प्रकार की अयोग्यता है। "[1] सच्चाई, ईमानदारी, निष्ठा आदि का कोई मूल्य नहीं रह गया है इसीलिये श्रीधर आजीवन मूल्य शून्यता, निरर्थकता और विसंगति के घोर निराशामय वातावरण में भटकने के लिये विवश है। समाज में ऐसे निर्मम व्यक्तियों की भी कमी नहीं जो श्रीधर की मजबूरी का फायदा उठाकर उससे कम पैसों में अधिक काम करवाते हैं।

---

1. अधूरे साक्षात्कार : नेमिचन्द्र जैन, पृ० 47
2. यह पथ बन्धु था : पृ0 217

इस उपन्यास में समाज के विस्तृत फलक पर अनेक विकृतियों का चित्रण हुआ है जैसे धर्मशाला के मैनेजर द्वारा अँधेरा को तंग करना, साधू द्वारा धर्म के नाम पर जनता को डराकर अपना स्वार्थ साधना, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, दहेज प्रथा वेश्या वृत्ति आदि सब परोक्ष रूप से नैतिक मूल्यों के विघटन का ही परिणाम है।

(1) राजनीतिक स्तर पर नैतिक मूल्यों का विघटन :

जिस प्रकार वैयक्तिक एवं सामाजिक स्तर पर नैतिकता महत्वपूर्ण है उसी प्रकार राजनीति में भी नैतिकता अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि ''नीति रहित राजनीति आत्मप्रवंचना है।''[1] राजनीतिक प्रतिमान राजनेता को स्वार्थवश प्रजाहित को दाँव पर लगाने की स्वीकृति नहीं देता किंतु स्वाधीनता के दौर में परिवर्तित परिवेश के परिणाम स्वरूप काँग्रेसी नेताओं में निजी स्वार्थों को प्रश्रय देने की प्रवृत्ति ने राजनीतिक स्तर पर मूल्यों के विघटन को जन्म दिया। आलोच्य उपन्यास में काँग्रेसी नेता ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह पुस्तके साहब ऐसे ही अवसरवादी नेता के रूप में चित्रित हैं। झूठे संस्मरण छपवाना, झूठा सम्मान अर्जित करना इनका पेशा है। श्रीमन इनकी पोल खोलते हुए कहता है ——

'' यह पुस्तके ढोंगी व्यक्ति है। हरिजन फण्ड, खादी फण्ड, महिला फण्ड, जाने किन-किन फण्डों का चंदा खाए बैठा है और जब काम पड़ता है तो चंदे का सारा हिसाब गलत बताता है ''[2] एक अन्य स्थान पर वह कहता है ——

'' तुम स्वयं एक दिन देखोगे कि ये सब चरखा कातते हुए भेड़िए हैं, जिन्होंने अपने खूनी नख गोमुखी में छिपा रखे हैं।''[3]

---

1. हिन्दी उपन्यास : तीन दशक - पृ०
2. यह पथ बन्धु था पृ० 216
3. यह पथ बन्धु था पृ० 217

ठाकुर जी और पुस्तके साहब जैसे राजनीति के कर्णधार अनैतिकता के गर्त में इस हद तक गिरे हुए हैं कि उन्हें श्रीधर जैसा निरीह व्यक्ति भी रास्ते का काँटा प्रतीत होता है । इसीलिये वे चाहते हैं कि ———
'' किसी प्रकार श्रीधर पूरी तरह स्व खतरनाक क्रान्तिकारी सिद्ध हो जाय और या तो फाँसी पा जाय या फिर काला पानी, तो उनके रास्ते का यह काँटा दूर हो ।'' [1]

ठाकुर सकलदीप अंग्रेजों के साथ समझौता करके मंत्री बनने का ख्वाब देखते थे क्योंकि नैतिकता नाम की चीज उनमें रह ही नहीं गई। वस्तुतः इस प्रकार के भ्रष्ट, नीतिविहीन, सिद्धान्तहीन नेताओं के कारण ही राजनितिक स्तर पर भी मूल्यों का विघटन हो रहा था ।

3) नारी :

'' हिन्दी ही नहीं संसार भर के उपन्यास साहित्य में स्त्री की समस्या एक सर्वकालीन विषय रही है ।''[2] नरेश मेहता के इस उपन्यास में समाज का जितना व्यापक चित्रण हुआ है, उसके विघटनात्मक परिवेश में नारी के विविध रूपों का, तथा तत्कालीन समाज में नारी के प्रति समाज का व लेखक का दृष्टिकोण भी व्यक्त हुआ है । कथाकार ने एक ओर यदि युगों से पीड़ित, प्रताड़ित नारी का चित्रण सरो, गुणी मालिनी द्वारा किया है तो बदलते परिवेश में अपने अधिकारों के प्रति सचेत स्वतंत्र व सबल नारी के रूप में रत्ना व कमल का चित्रण भी किया है ।

---

1. ' यह पथ बन्धु था ' – पृ० 500
2. डॉ० गणेशन : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : पृ० 196.

सरो के चित्रण द्वारा ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक पतिव्रत धर्म से आगे उसके विषय में सोचना नहीं चाहता इसीलिये वह भी श्रीधर की तरह निरीह है। लेखक ने परंपरावादियों की तरह गार्हस्थिक जीवन को ही उसके जीवन का केन्द्र बिंदु मान लिया है और उसे आदर्शरूप में परिकल्पित कर उसको आदर्श पत्नी दिखाया है, जो अपने स्वामी को परम पुरुष मानती है, उसी परम पुरुष में सरो नारी सत्ता का अंतिम गति समझती है। सरो के माध्यम से लेखक ने नारी के अखिल, कर्तव्य निष्ठ सहनशील रूप का चित्रण किया है '' जो परिवार के बीच अमानवीय त्रास पाती है और अगाध सीमाहीन समुद्र की भांति जीवन की तीखी पीड़ा को अपने में समाई रखती है।'' [1] श्रीधर उसके इस रूप से परिचित है इसीलिए वे कहते हैं कि —— ''सरो तुम पृथ्वी हो।'' श्रीधर के गृह त्याग के पश्चात ऐसी देवी स्वरूप नारी के चरित्र पर जेठानी द्वारा लांछन लगा, सहेलियों के बीच अपमान कर रख लेना ——('' पत्नी चरित्रहीन थी इसीलिये तो पति बिना बताए छोड़ कर चला गया '' [2]) परित्यक्त नारी के प्रति समाज के दृष्टि कोण को व्यक्त करता है।

मेहतानी जैसी खपती, टूटती, छटती, अपंग पुत्री को लेकर ध्वस्त और प्रतीक्षारत सरो अंततः यक्ष्मा की शिकार हो जाती है। '' इस प्रकार अत्यंत सहिष्णु, समर्पित, व्यक्तित्वशील, अस्तित्व हीन सी, दूसरों के दंभ को नतमस्तक हो झेलती आदर्शवादी पति की आदर्शनिष्ठा छाया में गलती टूटती, भारतीय पत्नी के रूप में वह चित्रित हुई है।'' [2] लेखक को उससे सहानुभूति अवश्य है क्योंकि वह '' नारीत्व की परंपरागत गरिमा एवं जीवन के महत् मूल्यों के प्रति निष्ठा भावना की अनन्यता की द्योतक है '' [3]

~~1. नेमिचन्द्र जैन : अधूरे साक्षात्कार – पृ० 46.~~
1. यह पथ बंधु था – पृ० 372
3 विवेकी राय :- हिन्दी उपन्यास उत्तरशती की उपलब्धियां : 140
4 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में मानव मूल्य व उपलब्धियां : भगीरथ बड़ोलि

मालिनी इस उपन्यास की अन्य नारी पात्र है जिसके चित्रण द्वारा लेखक ने तत्कालीन समाज में प्रचलित वेश्यावृत्ति को दर्शाया है। मालिनी जो वेश्या होने के कारण सभ्य समाज से निष्कासित है वास्तव में 'पथभ्रष्ट' नहीं बल्कि ऐसी नारी है जो आजीवन दीक्षित साहब को ही पति मान पतिव्रत धर्म का पालन करती है। अगर वह वेश्या होती तो पतिव्रत धर्म क्यों निभाती पूजा, उपवास, जप तप आदि क्यों करती? लक्ष्मण का कथन कि — ''माजी गंगा है अगर माँजी वेश्या है तो गंगा भी वेश्या है, मालिनी की पवित्रता का द्योतक है। जिसे समाज वेश्या समझ दुर्व्यवहार करता है वह वास्तव में पतिता नहीं थी किंतु समाज में एक पतिता बन कर जीने के लिये विवश थी क्योंकि किशन के शब्दों में —— xxx '' हममें इतना साहस नहीं कि बढ़कर हम उसका हाथ पकड़ लें और कहें कि आओ मेरे पार्श्व में खड़ी हो जाओ तुम मेरी नारी हो, मैं तुम्हारा पुरुष और मेरी नारी को उसके पुरुष के रहते देखें कोई कैसे लांछित कर जाता है।''[1] समाज उसे अपनी संकुचित दृष्टि के कारण ही आदर व सम्मान नहीं दे सकता। लेखक को समाज का यह नज़रिया कदाचित पसंद नहीं तभी उसने वेश्या के प्रति कहीं भी घृणा नहीं प्रकट की बल्कि उसके नारी सुलभ गुणों का आदर करते हुए समाज में पुनः प्रतिष्ठा दिलाने में वह इस सीमा तक पहुँच गया है कि उसने किशन द्वारा उससे विवाह का प्रस्ताव रखवा दिया है। कुछ आलोचकों ने मातृ तुल्य मालिनी से विवाह की कल्पना की आलोचना भी की है किंतु हम इसका उद्देश्य स्पष्ट कर चुके हैं। लेखक ने ऐसी नारी के प्रति समाज की संकुचित दृष्टि को व्यापकता प्रदान करने का प्रयास किया है जो वास्तव में स्वयं अपराधिनी न होकर पुरुष की वासना का शिकार है। इसकी पुष्टि किशन के निम्न कथन से हो जाती है ——

---

1. 'यह पथ बन्धु था' - पृ० 275

''जिस व्यक्ति ने हाथ पकड़ा था, वह इतना कामी, विलासी और देह लोलुप था कि वह वेश्या ही बना सका पत्नी नहीं ।'' [1]

मालिनी जैसी वेश्या के चित्रण द्वारा लेखक ने यह भी स्पष्ट किया है कि सामान्य नारी की तरह, एक वेश्या भी नारी है, त्याग, प्रेम ममता से मंडित । मालिनी का निम्न कथन उसके असफल मातृत्व की पीड़ा को व्यक्त करता है ——

''किशन रे, कभी किसी जन्म में तुझे अपने पेट से उत्पन्न देखना चाहती हूँ । और उसी जन्म में मेरा यह वेश्यापि का शाप छूटेगा । ''

इन्दु जैसी पात्रा के माध्यम से लेखक ने ऐसी नारी का चित्रण किया है जो बचपन में माँ के प्रेम से वंचित रहने के कारण फैंटसीपूर्ण दुनिया में जीती है और उपन्यासों की नायिकाओं से तदात्म्यीकरण कर उनके जीवन के प्रेम पक्ष की अनुभूति द्वारा अपने अभाव पूर्ण पक्ष को भरने का प्रयास करती है । '' उसका व्यक्तित्व अभिजात और सरलता, कलाप्रियता और विलासिता, स्वतंत्रता और मानसिक दमन के अनेक अंतर्विरोधी तत्वों की उपज है ।'' [2] स्नेहवंचिता होने के कारण ही वह श्रीधर पर अपार स्नेह लुटाती है । एक आलोचक का कहना है कि इन्दु का संपर्क बालक श्रीधर को स्वप्नशील बनाता है, किसी प्रकार की शक्ति नहीं देता, किसी प्रकार की गहरी संकल्पमूलक तीव्रता नहीं जगाता। '' [3] लेखक के कुछ मित्र भी इसी विचार से प्रसित प्रतीत होते और जैनेन्द्र के 'भाभीवाद' की तरह ' दीदीवाद' की आलोचना करते हुए कहते है कि संभवतः श्रीधर दीदी से नहीं मिले होते तो ऐसे नहीं होते, जीवन में कुछ और होते । 'दीदीवाद' की धारणा पर किशन टिप्पणी करते हुए कहता है — दीदियां अपने को हमेशा ऐसा ही बना जाती है ।

— कैसा बना जाती है ?

---

1. ' यह पथ बंधु था — पृ० 274
2. अधूरे साक्षात्कार पृ० 45
3. अधूरे साक्षात्कार - पृ० 45

— अपने जैसा निरीह ।

यह सत्य है कि लेखक ने इन्दु जैसी पात्रा की आलोचना करवाई है, लेकिन क्षुद्र नहीं की क्योंकि एक ओर उनका उद्देश्य समाज का ऐसी नारी के प्रति दृष्टि कोण व्यक्त करना रहा है, दूसरी ओर वे साहित्य को ' मानवता की उद्गाथा ' मानते हैं और उपन्यास नायक श्रीधर में मानवता के चरम रूप की अभिव्यक्ति देखना चाहते हैं । इसी लिये इन्दु जैसी पात्रा की अवतारणा उनकी आवश्यकता बन गई, क्योंकि इन्दु के संपर्क से ही श्रीधर को मानवता का ज्ञान हुआ । बचपन में जो श्रीधर को उसके यहाँ अच्छी पुस्तकें पढ़ने का अवसर नहीं मिला होता तो वह इतना आदर्शवादी और भावुक नहीं हो सकता था । जो लोग इन्दु जैसी नारी की आलोचना यह कह कर करते हैं ऐसी नारी व्यक्तित्व के विकास में बाधक है वे यह भूल जाते हैं कि इन्दु का जीवन अभाव का था — भौतिक अभाव नहीं, प्रेम का अभाव । बचपन में माँ के प्रेम से वंचित इन्दु का विवाह जब एक वृद्ध के साथ हो जाता है तो उसके मन पर गहरा आघात लगता है जिसका आभास उसके द्वारा श्रीधर को लिखे पत्र से होता है । तत्पश्चात् वैधव्य का अभिशाप ! ऐसी नारी जो आजीवन प्रेम की अतृप्त आकांक्षा रखते हुए भी आजीवन देती ही रही आलोचना की नहीं सहानुभूति की पात्र है ।

गुणवती के माध्यम से ऐसी बालिका का चित्र उभरता है जो पारिवारिक परिस्थितियों के कारण असमय ही प्रौढ़ बना दी जाती है । तत्पश्चात परित्यक्ता होने के अभिशाप से ग्रस्त ! लेखक को ऐसी नारी से सहानुभूति है और समाज के आचरण पर खेद । कमल और रत्ना शक्ति रूपा उद्देश्य संकल्पित, दृढ़ चरित्र की नारियाँ हैं । रत्ना के साहस का प्रमाण उसकी क्रांतिकारी गतिविधियों के अतिरिक्त इन शब्दों से भी मिलता है — ''यदि ये पिता और पति न होते तो मैं निश्चय ही इनसे विवाह करना चाहती ।"

लेखक ने इन नारी पात्रों के माध्यम से तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति, उसकी गति को तो इंगित किया है समाज का नारी के प्रति दृष्टि भी व्यक्त किया है जिसके कुछ उदाहरण ये उद्धृत वाक्य है —

लेखक का कहना कि '' औरतो की बाति तो भवर का पानी होती है। दूर-दूर का पानी घिर-घिर कर, घूमघूम कर सारी कूड़े करकट के साथ गहरा ही होता जाता है। एक बार शुरू भर होने की देर है कि बस जिस औरत के भी चारों ओर यह घूमने लगता है उसे लेकर ही रहता है सिवाय डूबने के अन्य कोई गति नही होती।'' [1] तिल का ताड़ बनाने वाली नारियों के प्रति दृष्टिकोण व्यक्त करता है।

समाज द्वारा पीड़ित और प्रताड़ित नारी की स्थिति बताते हुए लेखक कहते है — '' दोनों ही प्रत्यूषा थी (इन्दु व मालिनी) केवल आकाश का अंतर है। लेकिन विवश दोनों ही है एक समाज युक्ता होकर दूसरी समाज परित्यक्ता होकर।'' वस्तुतः समाज में नारी पुरुष की विडम्बनाओं का ही शिकार है। एक ओर यदि दीक्षित साहब जैसे पुरुष उसे वेश्या से पत्नी नही बना सका तो दूसरी ओर श्रीधर ने उसे पत्नी से मेहतरानी बना दिया। तभी सरो विवश हो सोचती है कि ,, '' जब ये किसी से कुछ नही कहते, तब भला वह किसी से क्या कह सकती है।'' [2] नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण श्रीधर के शब्दों में व्यक्त करते हुए लेखक का मानना है कि —'' नारी को मात्र एक सूत्र की आवश्यकता होती है और वह उसी के सहारे इतना बड़ा जीवन जो कि दिन के कार्यों में और रात के एकांतों में फैला हुआ है काट लेती है।'' [3]

1. यह पथ बन्धु था - पृ०
1. यह पथ बन्धु था - पृ० 310
2. यह पथ बन्धु था - पृ० 291

वेश्या बनने के लिये विवश नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण इन पंक्तियों से स्पष्ट है –

''किसी ने उन्हें बचपन में गुण्डों के हाथों बेच दिया था, पर अपने जीते वे सदा एकनिष्ठ रहीं । xxxx ऐसी साध्वी को भी दुनिया तो वेश्या ही समझ है न x x x दुनिया समझती है कि वेश्या का अंत और क्या होना था।''[1]

दूसरी ओर लेखक भी सोचता है कि –

'' वेश्या न होती तो क्या एक बार स्पष्ट रूप से दीदी न कहता ? बार-बार चाहने पर भी दीदी गले में आकर फंस जाता रहा । ''[2]

यहाँ नारी के प्रति पुरुष का अन्य दृष्टिकोण को ही व्यक्त करता है –

''रघुनाथ ने श्रीधर की ओर हंसते हुए देखा और उसी तरह बोला – गुरु जी । यह मेरी औरत है इसलिये मार रहा हूँ ''[3] अर्थात वह पत्नी है इसलिये पुरुष को उसके साथ पशुतुल्य व्यवहार करने का भी अधिकार है ।

उपर्युक्त उद्धृत अंश जहाँ नारी के प्रति समाज की आस्था व दृष्टिकोण को व्यक्त करते है वहीं तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों को भी इंगित करते है । इन्दु जहाँ वैधव्य की पीड़ा झेल रही है वहीं वह अनमेल विवाह का भी शिकार है, गुणी के परित्यक्ता होने का कारण दहेज है । तत्कालीन समाज में नारी के प्रति जहाँ यह संकुचित दृष्टि है वहीं कमल और रत्ना जैसी परंपरागत सामाजिक रूढ़ियों की दासता से मुक्त नारी को भी स्थान प्राप्त है ।

कुल मिलाकर आलोच्य उपन्यास में नारी के विविध रूप और समाज का उसके प्रति दृष्टिकोण व्यापक रूप से चित्रित है ।

---

1. यह पथ बन्धु था, पृ0 252
2. वही, - पृ0 250
3. वही - पृ0 219

4) बदलते प्रेम संदर्भ :

प्रेम की नैतिकता सामाजिक संरचना पर निर्भर करती है । परंपरागत नैतिक मूल्यों में बदलाव के कारण प्रेम की परंपरागत परिभाषा भी बदली । 19 वी श0 के भारत में नारी स्वातंत्र्य एवं शिक्षा के प्रभाव से प्रेम और विवाह की परंपरागत मान्यताएँ शिथिल पड़ने लगी थी लेकिन आलोच्य उपन्यास प्रेम के इस परिवर्तित स्वरूप से अछूता है । कमल और रत्ना में इसका बदला स्वरूप देखा जा सकता है किंतु वह भी इतना नहीं जितना स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में था ।

वैदिक युग से वर्तमान संघर्ष तक पति- पत्नी के बीच पलने वाली पातिव्रत्य और सतीत्व की भावना इस उपन्यास के अधिकांश पात्रों में देखी जा सकती है । सरी को श्रीधर की उपेक्षा से कोई शिकायत नहीं, मालिनी वेश्या हो कर भी सती धर्म का पालन करती है लेकिन जैसा कि इस उपन्यास का महत्व इस बात से है कि इसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदलते हुए प्रतिमानों का बीज निहित है, उसी के अनुरूप उपन्यास में दो स्त्रियाँ ऐसी है जिसमें प्रेम और विवाह का बदलता स्वरूप देखा जा सकता है । एक है कमल जो पिता से विद्रोह करके प्रेम विवाह तक कर लेती है लेकिन पुनः समाज के सामने झुक जाती है और पिता के दबाव को न झेल पाने के कारण विशन के विरुद्ध गवाही देकर ..... अपनी मौलिकता खो बैठती है । हाँ क्रांतिकारियों के साथ रहने वाली रत्ना इतना साहस अवश्य जुटा लेती है कि विवाहित पुरुष श्रीधर के प्रति अपने आकर्षण को मुख से यह कह कर स्वीकार कर लेती है कि '' तुमी आमार शामी'' । पुरुष होकर भी श्रीधर ऐसे आकर्षण को स्वीकार करने का साहस नहीं कर पाते ।

पुरुष पात्रों में विशन का मालिनी दीदी से विवाह का प्रस्ताव कर बैठना वेश्यावृत्ति से जीने वाली स्त्रियों के प्रति सहानुभूति या भावुकता मात्र के

कारण है । बचपन में इन्दु दीदी के प्रति श्रीधर का आकर्षण मनोविज्ञान की भाषा में बाल-मन की दुर्बलता मात्र है ।

इस प्रकार यह उपन्यास अपने युग के सामाजिक परिवेश को विविध आयामों में साकार करता है ।

— ४ —

आर्थिक परिवेश :

प्रत्येक युग का सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक जीवन अर्थ प्रक्रिया से संचालित रहता है । मार्क्स के अनुसार आर्थिक परिस्थितियों के बदलने से समाज के संबंध बदलते हैं और समाज के संबंधों के बदलने से सभ्यता, संस्कृति कला और साहित्य में नवीनता आती है । स्वतंत्रता पश्चात भौतिक वादी चेतना के परिणाम स्वरूप मानवीय संबंधों के निर्धारण में अर्थ ने महत्व पूर्ण भूमिका निभाई । देश की आर्थिक नीति पर प्रमुख पूंजी पतियों व नेताओं का अधिकार हो गया था जिसके परिणाम स्वरूप गरीब और गरीब होता गया और अमीर और अमीर । आर्थिक विषमता के चक्र पारिवारिक मान्यताओं को भी बदला, इस उपन्यास में चित्रित आर्थिक परिवेश कुछ ऐसा ही है । आर्थिक वाद्यचक्र ही कीर्तनिया परिवार के विघटन का मुख्य कारण था । आर्थिक कारण से ही श्रीनाथ ठाकुर के दोनों पुत्र अलग हो गए । आर्थिक परिस्थितियों की विषमता में पड़कर श्रीधर ने घर छोड़ा । डा० राम दरश मिश्र के शब्दों में —— '' पेशा शोषण का अस्त्र है, वह चाहे प्रकाशक के हाथ में हो, चाहे स्वाधीनता की लड़ाई लड़ने वाले ठाकुर साहब जैसे त्यागी नेता के हाथ में । वह शोषण का अस्त्र बार-बार श्रीधर जैसे ईमानदार असमझौता वादी, स्वप्नदर्शी व्यक्ति को तोड़ता है और श्रीधर अंत में पाता है कि वह हारा हुआ टूटा हुआ आदमी बनकर रह गया है ।''

प्रकाशक आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के कारण ही लेखक पर दबाव डाल उससे कम पैसों में अधिक काम करवाता है । देश की राजनीति में भी उन्हीं लोगों का हाथ था जो आर्थिक रूप से समृद्ध थे । पुस्तके साहब नामांकित वकील और पुश्तैनी समाजिकता के कारण राजनीति में थे तो ठाकुर सकल नारायण पैसे के जोर पे । लेखक कहते भी है कि "कांग्रेस वही व्यक्ति सफल है जिसके पास पैसा है ।" अर्थ ने इन नेताओं की मति को इतना भ्रष्ट कर दिया था कि हरिजन फण्ड, चरखा फण्ड महिला फण्ड आदि सब को वे हड़प बैठे थे ।

इस उपन्यास में गुणवती के चरित्र की अवतारणा द्वारा लेखक यह दिखाना चाहा है कि जीवन में अर्थ को श्रेष्ट मानकर चलने वाले व्यक्ति कितने पाषाण हृदय होते है वे अर्थ के लालच में गुणी को इतना पीटते है कि वह अपाहिज हो जाती है । एक ओर दहेज प्रथा की क्रूरता से गुणी आक्रान्त है तो दूसरी ओर उसकी माँ सरो भी आर्थिक विषमता की विसंगति का शिकार है । अर्थोपार्जन करने वाली उसकी जेठानी उसपर अत्याचार ही नहीं करती बल्कि उसे परिवार की आर्थिक जर्जरता का दोषी भी ठहराती है ।

इस प्रकार आलोच्य उपन्यास में अर्थ जहाँ व्यक्ति स्तर पर मानवीय संबंधों में बदलाव का सूचक है वहीं दूसरी ओर सामाजिक स्तर पर देश की राजनीति में भी निर्णायक भूमिका निभाता है ।

—"—

राजनीतिक परिवेश

''हर देश और समाज की राजनीति का एक स्वभाव होता है और वह स्वभाव जनमानस के स्वभाव से बहुत मेल खाता है । जब तक उसका

स्वभाव नहीं बदलता तब तक राजनीति नहीं बदलती।''[1] आलोच्य उपन्यास में राष्ट्रीय नवजागरण काल का विस्तृत चित्रण हुआ है। देश में गांधीवादी और क्रांतिकारी आंदोलन समानान्तर रूप से चल रहा था और नवयुवकों में जागृति उत्पन्न कर रहा था। देश में राष्ट्रीयता की भावना हिलोरें ले रही थी। स्वराज्य की स्थापना सर्वोच्च आदर्श बन चुका था और उसके लिये देश का युवा सारे प्रलोभन ठुकरा कर घर से निकल पड़ा था। तत्कालीन राजनीतिक परिवेश में कथानायक सामंती व्यवस्था के दबाव के विरुद्ध विद्रोह करके निकलते हैं और इन्दौर पहुँचते ही राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ जाते हैं। अनुमानतः उनके इन्दौर पहुँचने का समय 1919-1920 के आसपास है क्योंकि इन्दौर में उस समय रौलिट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह का व जलियाँ वाला काण्ड का वर्णन है। इन्दौर में एक ओर वह किशन और रत्ना जैसे क्रांतिकारियों के संपर्क में आता है तो दूसरी ओर पुस्तके साहब जैसे गांधीवादी के संपर्क में वह अनुभव करता है कि किशन और रत्ना जो कांग्रेस के अहिंसात्मक संघर्ष में विश्वास नहीं करते, जैसे क्रांतिकारियों को समाज का पूरा समर्थन प्राप्त नहीं था दूसरी ओर गांधी जी की नीतियों का भी स्वरूप जनता के आगे स्पष्ट नहीं था। इस समय के आंदोलन में '' न रूस की जन क्रांति जैसा ज्वार ही दिखता था, न फ्रांस की राज्यक्रांति जैसी चेतना।''[2] श्रीधर ने अनुभव किया कि कांग्रेस में आगे बढ़ने के लिये व्यक्ति की सामाजिक स्थिति अच्छी होनी चाहिए। पुस्तके साहब जैसे राजनीति के कर्णधार देश के छोटे राजनीतिज्ञों का शोषण कर रहे थे। और तमाम फण्डों का चंदा खाए बैठे थे। दिशाहीन और सिद्धान्तहीन राजनेताओं के नेतृत्व के कारण जन साधारण की राजनीतिक चेतना अस्पष्ट थी।

---

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास : पृ- 159.
2. यह पथ बन्धु था : पृ-

जो लोग देश को आजाद करने की सच्ची लगन और आदर्शों के कारण राजनीति में आए थे, उन्हें इस बात का परिताप था कि अंग्रेज शोषण के विरुद्ध तो हम सत्याग्रह कर रहे हैं लेकिन पुस्तके साहब जैसे लोगों के शोषण को त्याग, तपस्या देश सेवा करने के लिये विवश है। देश की राजनीति में पुस्तके साहब जैसे चरखा कातते हुए भेड़िए घुस आये थे जिन्होंने अपने खूनी नख गोमुखी में छिपा रखे थे। इस तरह एक ओर तो कांग्रेस की आड़ में अपने निजी स्वार्थों को प्रश्रय देने वाले नेता ऐश्वर्य व सम्मान से रह रहे थे तो दूसरी ओर किशन और रत्ना जैसे निष्काम देश सेवक भेष बदलकर रहने के लिये विवश थे। कथानायक के इन्दौर से बनारस पहुंचने पर स्वाधीनता आन्दोलन भी जोर पकड़ने लगा। जैसे-जैसे यह आन्दोलन जोर पकड़ने लगा वैसे-वैसे सरकार का दमन चक्र भी तेजी से चल पड़ा। तलाशियाँ, धड़पकड़, मार-पीट इतने जोरों पर होने लगा कि पूरा देश ही ''एक बड़ा भारी जेल खाना हो गया''। हजारों की संख्या में लोग पकड़े जाने लगे प्रेस 'अखबार' दफ्तर सब पर ताले डाल दिए गये। लोगों की जायदाद पर सरकार कब्जा कर रही थी और सभा जलूस पर धाराएं लागू कर दी थी जिसके परिणाम स्वरूप सारा देश असहयोग आन्दोलन की ज्वाला में सुलगने लगा। आये दिन विदेशी वस्त्रों की होलियाँ जलाई जाने लगी। सबेरे प्रभात फेरियां निकलती, सामूहिक चरखा कतता। महिलाओं ने रेशमी वस्त्रों को जलाकर खादी पहनने का व्रत लिया और अपने जेवर तक दान में दिये। ''ऐसा लग रहा था कि देश विदेशी जुए को उतार फेंकने के लिये कटिबद्ध हो चुका है।''[1] सन् 42 का आन्दोलन मध्यवर्ग के आक्रोश की अभिव्यक्ति था और मध्यवर्ग ही उसका नेतृत्व कर रहा था।

---

1. यह पथ बन्धु था

इस प्रकार उपन्यास का 'उत्तर पथ' अधि से ज्यादा राजनीतिक गतिविधियों से भरा पड़ा है । राजनीतिक परिवेश को जीवंतता प्रदान करने के लिये कथाकार ने भाषा में नारों आदि का भी प्रयोग किया है ——

'' नहीं रहना नहीं रहना ।।
सरकार जालिम नहीं रहना
नहीं रहना नहीं रहना
भूखा बंदर नहीं रहना ।।

अथवा

' दूर हटो ऐ दुनियावालों, हिन्दुस्तान हमारा है ' —— आदि

इस प्रकार आलोच्य उपन्यास में विशन को गोली लग कर मर जाना, रत्ना को फांसी लग जाना, श्रीधर जैसे निरामिष राजनीतज्ञ का जेल जाना आदि घटनाओं की संयोजना से राजनीतिक चेतना को मुखरित किया है ।

—•—

आंचलिक परिवेश :

आंचलिकता स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की एक प्रमुख प्रवृत्ति है । आलोच्य उपन्यास में यद्यपि रेणु और नागार्जुन के उपन्यासों की सी आंचलिकता नहीं है तथापि आंशिक रूप से आंचलिकता का पुट व्याप्त है । कथाकार ने भूमिका में लिखा है कि ——

'' इस उपन्यास का परिपार्श्व आंचलिक है किंतु शील निरूपण सार्वजनीन । इस उपन्यास की आंचलिकता दो भागों में विभक्त है ——

1) मालवा अंचल से संपृक्त महाराष्ट्रीय संस्कृति और परिवेश का चित्रण

2) कश्मीर की संस्कृति और उसका चित्रण

इस उपन्यास की आंचलिकता के विषय में कुछ भी कहने से पूर्व यह बता देना आवश्यक है कि नरेश मेहता का मालवा से गहरा संबंध रहा है । बाह्य रूप से मालवा भले ही उनसे छूट गया हो किंतु उनके अंतर में आज भी वह बसा हुआ है । किसी भी जीवंत अतीत की सृजनक कलाकार के रचनात्मक मनस में ही सुरक्षित रहती है इसीलिये नरेश जी कहते है कि- '' बाह्य रूप से मालवा सब के लिये मुझसे छूट चुका है परन्तु उतनी ही तीव्रता से मालवा की वह कृष्णा माटी, श्यामा कुल बान्धवता, वे मालवी आंखों की पुष्पवर्णी सन्ध्याएं, प्रसन्न सलिला बिल्लौरा नदियां, ऊंट के कूबड़ जैसे वनस्पतिहीन पठारी ऐसे ही जन जितना कुछ है जो मुझ में जन्म जन्मांतरों के लिये रस बस गया है । × × × × × × × × × × × ××××× मुझे अपने पसीने में भी मालवी गंध अनुभव होती है । एक साथ यदि विद्यापति, तुलसी, मीरा रविन्द्र की भी मेधा हो, तब भी मेरी इस आराध्य कृष्णा माटी का स्तवन संभव नहीं ।''[1] उपन्यास में भी मालवा के प्रति इस मोह को देखा जा सकता है —

''मालवा ..... यह नाम जैसे मूर्त होता हुआ बजता ही चला गया । जैसे मां को पुकारा हो ..... मालवा ।। × × पच्चीस वर्षों बाद मालवी पसीना गंधाने लगा कि कितनी भिन्न गंध है हमारी ।''[2]

वस्तुतः मालवा के प्रति लेखक का अत्यधिक मोह का ही परिणाम है कि इस चरित्र प्रधान उपन्यास में आंचलिकता की भी प्रवृत्ति देखी जा सकती है ।

लेखक ने मालवा अंचल का चित्रण श्रीधर के शैशव काल से लेकर गृह त्याग के पूर्व तक किया है । मालवा के भौगोलिक चित्रण में लेखक ने

---

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास : पृष्ठ० 151 — नरेश मेहता
2. यह पथ बन्धु था : पृष्ठ० 568

यथार्थ व कल्पना के प्रतिसहयोग से चित्र उपस्थित किया है । उपन्यास में जगह-जगह परवर्तित मालवा अंचल का प्राकृतिक सौन्दर्य आँखो के सामने साकार हो जाता है । "तीन ओर पहाड़ियों से घिरा तलाब, शाहजहाँ का बनवाया बादशाही पुल केवड़ा स्वामी का वन, उदासी मठ, सोमनाथ घाट का मंदिर, क्षितिज में चांदनी की चमकती पगड़ी सी दिखाई देने वाली पार्वती नदी, शीशम के बगीचे, बरगद, आम, कलिपठार, काली माटी आदि इन सब आंचलिक तत्वों को लेखक ने बड़ी तन्मयता से यथास्थान संजोया है । मालवा में रेल-लाईन बिछाए जाने से वहाँ हुए औद्योगीकरण के पश्चात परिवर्तन को भी उपन्यास में देखा जा सकता है ।

मालवा अंचल की संस्कृति में अनेक संस्कृतियों का मेल जोल लेखक ने चित्रित किया है । बंगाली दोस्त पेमन बाबू के यहाँ देवी की प्रतिमा और दुर्गा पूजा में बंगाली संस्कृति का वर्णन है । बाला साहब द्वारा सम्पन्न करवाया जाने वाला गणेशोत्सव में डांडिया, नौटंकी आदि महाराष्ट्रीय संस्कृति का चित्र प्रस्तुत करती है ।

उज्जैन में शिप्रा तट का वर्णन, सुशीला के ब्याह में मालवा के रीति रिवाजों का विस्तृत वर्णन है । लड़की के विवाह में नाना-नानी का आना, विवाह से पूर्व हल्दी चढ़ाना । शृंगार करने के समय गाए जाने वाली आदि, ससुराल में लड़की के पहली बार आने पर उसके स्वागत में केले के खम्भे, तोरण, कलश पान, सुपारी, मंगलाचार इत्यादि मालवा के आंचलिक लोकाचार रीति-रिवाज को दर्शाती है । इसमें कुछ आंचलिक मिथ भी है जैसे 'दीवा दीतवार' कह कर दीपक को बुझने से बचाना, आंचलिक मुहावरे जैसे "धूप धानी वाकर पानी" आदि, आंचलिक शब्द जैसे 'बंगवई,' 'केवड़ा' आदि सब मालवा के आंचलिक परिवेश को साकार करते हैं ।

काशी की संस्कृति और उसके चित्रण में भी आंचलिकता का पुट विद्यमान है । कचौड़ी गली, संकट मोचन, पक्का महल आदि में भटकता अधीर काशी के परिवेश को भी दर्शाता चलता है । काशी में साहित्यिक गतिविधियों का लेखक ने विस्तृत चित्रण किया है । काशी में शनिवार का दिन इसी लिए हुआ करता था । बंजड़े पर साहित्यिक गोष्ठियों आदि में विशाल पैमाने पर भांग, बूटी, पान के पत्ते का प्रबंध मुजरे का प्रबंध आदि वहां की संस्कृति को दर्शाता है । तुलसी घाट, केदार घाट आदि के विस्तृत वर्णनों के साथ वहां पर ब्राह्मण बालकों का यज्ञोपवीत संस्कार से वहां की मान्यताएं आदि को भी चित्रित करता है ।

वस्तुतः इस उपन्यास में स्थानीय आंचलिकता का पुट अवश्य है किंतु वह मात्र परिवेश के रूप में ही चित्रित है ।

निष्कर्षतः आलोच्य उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में व्यक्ति और परिवेश के संघात की अभिव्यक्ति के साथ गहराई और व्यापकता दोनों व्याप्त है । '' इसमें प्रस्तुत मानव स्थितियों में एक साथ ही भागवत उष्मा भी है और बाह्य यथार्थ की प्रामाणिकता भी जो उन्हें अपने स्तर पर पर्याप्त विश्वसनीय बनाती है ।'' ।

xxxxxxx

---

1. नेमिचन्द्र जैन : अधूरे साक्षात्कार

: तीसरा अध्याय :

' यह पथ बन्धु था ' में रूमानियत और यथार्थबोध

(क). उपन्यास में अकेलेपन व अजनबीपन का अंकन (उप-अध्याय)

' यह पथ बन्धु था ' में रूमानियत और यथार्थबोध

मनुष्य स्वभाव से महत्वाकांक्षी और संवेदनशील प्राणी है । उसकी महत्वाकांक्षा उसे यथार्थ की सीमाओं से अवगत कराती है अर्थात किसी भी कामना की उपलब्धि के लिये उसे उसकी वास्तविकता से गुजरना पड़ता है । सामान्य शब्दावली में यही वास्तविकता यथार्थ है । '' यथार्थ का क्षेत्र मनुष्य का अंतर्मन है । ''[1] '' यथार्थ का सामान्य और तत्कालिक अनुभव जब विशिष्ट और सुनिश्चित बोध बनता है तब रचना का विषय बनता है । ''[2]

अत्यधिक महत्वाकांक्षा का परिणाम असंतोष होता है । मनुष्य जब बाह्य जगत से असंतुष्ट होता है तो वह मस्तिष्क में क्रियाशील हो जाता है अर्थात वह कल्पना लोक में विचरने लगता है और कल्पना में ही असंभाव्य को संभाव्य बना देता है । ''मनुष्य में कल्पनाशक्ति का होना यथार्थ है । ''[3] यथार्थ के सम्मुख मनुष्य की स्थिति एक निस्सहाय भोक्ता' की सी होती है । यथार्थ की क्रूर पाशविक शक्ति द्वारा कुचले जाने का भय भावुक और संवेदनशील व्यक्ति को जब कल्पनाशील बना देता है तो वह यथार्थ से सीधे न जूझकर रोमानी धरातल पर जूझता है । इस तरह उसमें रूमानियत का अविर्भाव होता है । कल्पना रोमांस वाद का एक रूप है । '' लोगों की सामान्य धारणा है कि रोमांस विलासी जीवन की क्रोड़ में पलता-फूलता है और उसकी सुकुमार लता संघर्षरत मानव जीवन के ताप को पाकर मुरझा जाती है । परंतु स्वस्थ रोमांस मानव जीवन में ताजगी लाने तथा उसे गतिशील बनाए रखने के लिये अत्यंत आवश्यक है ।'[4] '' साहित्य के क्षेत्र में रोमांस उतना ही यथार्थ है जितना की रोटी कपड़ा । ''[5]

---

1. मोहन राकेश : उपन्यास और यथार्थ चित्रण, आलोचना 13
2. मैनेजर पांडेय : साहित्य के समाज शास्त्र की भूमिका पृ0 241
3. मोहन राकेश : उपन्यास और यथार्थ चित्रण, आलोचना 13
4. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद
5. 'कल्पना' संपादकीय - अक्टूबर 1951 पृ0 743

आधुनिक युग में हम रोमांस वाद को यथार्थवाद से अलग समझने लग गए है पर रोमांटिक युग के विचारकों के अनुसार यथार्थ रोमांस की सार वस्तु है । दोनों के मूल में प्रेरणा श्रेष्ठतर जीवन की कल्पना ही है ।

आलोच्य उपन्यास में मनुष्य और समाज की अपेक्षा एक व्यक्ति के यथार्थ जीवन चित्रण पर अधिक बल दिया गया है । व्यक्ति के अकेले, अजनबी और व्यर्थ होते जाने के अनुभव और इसको जन्म देने में परिवेश की भूमिका को इस उपन्यास में कहीं सपाट ढंग से तो कहीं संकेत या पेंटसी का सहारा लेकर कहा गया है । जहां-जहां कथा सपाट ढंग से कही गई है वहां यथार्थबोध का और जहां जहां कथा सांकेतिक या पेंटसीपूर्ण है, वहां रूमानियत का प्रभाव लक्षित है ।आलोच्य उपन्यास के विषय में आलोचक नेमिचन्द्र जैन का कहना है कि – '' उपन्यास में ऐसे कई स्थल है जहां लेखक यथार्थ में निर्ममता पूर्वक गहरा नहीं उतर पाता है और सतह के रंगीन आकर्षक रूप ही उसे मुग्ध रखते है । ''[1] स्पष्ट है कि ऐसे स्थलों के पीछे लेखक का रोमांटिक मोह व्याप्त है । रोमानी दृष्टि स्वच्छन्दता की भावना से अनुशासित रहती है । यह स्वच्छंदता प्रेम के क्षेत्र में, प्रकृति की भावना से अनुशासित रहती है । यह स्वच्छंदता प्रेम के क्षेत्र में , प्रकृति की क्रोड़ में या नारी विषयक दृष्टि कोण में देखी जा सकती है । इस उपन्यास के अधिकांश पात्रों में रोमांटिक बोध और यथार्थ बोध को देखा जा सकता है । उपन्यास नायक श्रीधर में तो दोनों का अद्भुत संतुलन है इसीलिये वह मात्र रूमानी या एक काल्पनिक पात्र न होकर साधारण मनुष्य का प्रतिरूप लगता है, जो अत्यधिक भावुक हो जाने पर स्वर्गमय अतीत के संसार में अर्थात रोमानी लोक में भ्रमण करने लगता है किंतु यथार्थ को विस्मृत कर पूर्णत्या निष्क्रिय नहीं हो जाता । यथार्थ का बोध उसे पुनः इसी धराधाम पर लौटा लाता है ।

---

1. अधूरे साक्षात्कार : नेमिचन्द्र जैन पृ0 49

बचपन में इंदु दीदी का संपर्क श्रीधर की सरस वृत्तियों को प्रभावित कर उसे भावुक व संवेदन शील बना देता है । इसीलिये उसका किशोर मन स्वप्न में दीदी के साथ कभी पहाड़ी के शिखरों पर दौड़ता है तो कभी नदी की काली चट्टानों पर भटकता है तो कभी वह दीदी को अंगुलियों से, पलकों की बरौनियों से तो कभी संपूर्ण शरीर से वैसे ही छू लेना चाहता है जैसा कि वह मीठी लगने वाली धूप को छूता है । '' उसके निकट निश्चय ही दीदी का बड़ा भारी मोह है इसीलिये जब दीदी उसे 'हैमलेट' पढ़ कर समझाती है तो वह किंकर्तव्यविमूढ़ सा बैठा समझने की चेष्टा छोड़कर देखने लगता है कि दीदी कितनी सुंदर लगती है, जब वो बाल खोलकर कहती है- ओ हैमलेट । हैमलेट । । ''[1]

श्रीधर के चरित्र में रूमानियत बचपन से ही थी । इसकी पुष्टि तब और भी हो जाती है जब वह सोचता है कि दीदी नाराज न होती तो वह उसकी आंखों को चूम लेता और कहता '' दीदी तुम सबसे पवित्र हो, सम्भवत: धूप और जल से अधिक । ''[2] एक आलोचक का मानना है कि ''स्वभाव से संकोची होने के कारण श्रीधर के हृदय की बात होठों तक न आ सकी और बिशन के समान किसी प्रकार के अयाचित प्रस्ताव की नौबत नहीं आई जिसकी पूरी संभावना थी । ''[3]

जैसे-जैसे समय बीतता है और श्रीधर में जीवन के यथार्थ को परखने की शक्ति और देखने की दृष्टि गहन होती जाती है । असफलताओं का अनवरत सिलसिला उसके जीवन के कटु यथार्थ को जैसे-जैसे अनावृत करता है, यथार्थ का बोध उतनी ही तीव्रता से उसके रूमानी आवरण को भेदता हुआ, उसके अंतस में पैठता जाता है । कल्पना शक्ति के समानान्तर ही व्यक्ति में आदर्शभाव का

---

1. यह पथ बन्धु था : पृ0 102,103
2. वही : पृ0 121
3. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : पृ0 592

होना भी यथार्थ है । अपनी आदर्शवादी भावुकता के कारण वैयक्तिक स्तर पर जहाँ श्रीधर अपने पारिवारिक दायित्वों को निभाने में असफल रहता है वहीं सामाजिक स्तर पर यथार्थवादी व्यवहारिकता के अभाव में वह राजनीति के क्षेत्र में, पत्रकारिता के क्षेत्र में तथा अध्यापन के क्षेत्र में असफल सिद्ध होता है । असफलताओं को झेलता हुआ वह इस वास्तविकता से भलि-भाँति परिचित हो जाता है कि जिस प्रकार स्वप्नों का जीवन में कोई स्थान नहीं उसी तरह भौतिकतावादी युग में आदर्शों और सिद्धान्तों का महत्व नहीं रहा । वे जिन आदर्शों को पुस्तकों में पढ़कर बाहर खोजने निकले थे वे सब आदर्श यथार्थ में पुस्तकीय हो कर रह गए थे ।

असफलता, भटकाव, निरुद्देश्यता, और निरर्थकता बोध ही श्रीधर के जीवन का यथार्थ है जिसे भोग कर पच्चीस वर्ष पश्चात् जब वह घर लौटता है तो पूर्ण रूप से पराजित और परास्त होकर । उसकी आस्थाएँ खण्ड-खण्ड हो जाती है और वह महसूस करता है कि उसका पुरुषार्थ दीमक खाई पुस्तक बन कर रह गया है, जिसका कोई मूल्य नहीं । वह सोचता है —

> " इतना कुछ खोकर उसने क्या अर्जित किया ..... यह टूटा घर ?
> पानी उलीचती दीवारें ? पत्नी की मृत्यु ? गुणी की अपंगता ?.....
> और आज की यह असमाप्त लगने वाली भाद्रपद की रात ।"

ऐसे में वह पुनः कल्पना करता है जलप्लावन की और उसके पश्चात् नव संस्कृति की अर्थात 'विध्वंस' और फिर 'निर्माण' । इतिहास के माध्यम से मानव इतिहास के पुनः सृजन की कल्पना श्रीधर के व्यक्तित्व में रूमानियत को ही सूचित करता है क्योंकि परिवर्तन की आकांक्षा और नवीनता की कामना में पूर्व परंपरा का अतिक्रमण कर स्वच्छंद कल्पना करना रोमांटिक बोध का लक्षण है । आलोचक नेमिचन्द्र जैन ने उपन्यास में इस स्थान पर रोमांटिक मोह को चरम रूप में देखते है किंतु साथ ही वह यह भी कहते है कि लेखक ने यहाँ इतिहास की बड़ी ही सतही और भावुकता पूर्ण व्याख्या की है जो न उपयोगी है न वैज्ञानिक ।

वस्तुतः लेखक का उद्देश्य श्रीधर के माध्यम से मानव-मूल्यों में आस्था व्यक्त करना है इसीलिये वे उसे न तो पूर्णतया रोमानी बनाकर अकर्मण्य दिखाते है और न ही आजीवन, अकेलेपन, टूटन और व्यर्थतता बोध के पश्चात् उसमें संत्रास या मृत्यु की स्थिति को दिखाते है। इन सब के विपरीत वे उसे सृजन में प्रवृत दिखाते है। उसकी कल्पना ' सृजन कर्त्री आदि शक्ति' का रूप धारण कर उसे मनुष्य का इतिहास लिखने को प्रेरित करती है और जिस इतिहास का वह सृजन करते है उसमें उनके अनुभव का अंश है, कल्पना और यथार्थ का प्रतिसंयोग है। '' समाज अनुभवों के माध्यम से रचनाकार में घटित होता है, पर केवल घटित होना ही रचना बन जाना नही होता। रचना बनने के लिये आवश्यक है कि वे अनुभव रचनाकार के कल्पना प्रधान अतीन्द्रिय मनस् से टकराकर या प्रतिसृष्ट होकर लौटे xxxxxxxx जिस रचना में जितना अधिक यथार्थ और कल्पना का प्रतिसंयोग होगा वह रचना उतनी ही अधिक विश्वसनीय सृष्टि होगी। अश्वत्थामा का प्रतिशोध और पश्चाताप कल्पनात्मक होने पर भी अविश्वसनीय नही लगता। ''[1] उसी तरह श्रीधर का अंत में इतिहास की भावुकता पूर्ण व्याख्या कर मनुष्य के इतिहास लिखने की घटना काल्पनिक होते हुए भी अनुपयोगी या अवैज्ञानिक नही।

श्रीधर को अतीत की कल्पनाओं मे एक सुखद अनुभूति होती है। अत्यधिक भावुक हो जाने पर उसे सामने का यथार्थ कभी-कभी वितृष्णा करने वाला प्रतीत होता है और वह पलायनवादी हो जाता है। कभी घर की कल्पना करने लगता है तो कभी दीदी की स्मृतियों मे खो जाता है। श्रीधर का अतीत जीवी अथवा पलायन वादी होना उसके व्यक्तित्व मे रूमानियत का द्योतक है। प्रकृति के संदर्भ मे उसके व्यक्तित्व मे लक्षित होने वाला कवि का सा भावोन्माद भी रूमानियत का ही पहलु है। उदाहरण के लिये इन्दु के साथ वर्षा मे भीगते हुए उसके हृदय में उठने वाले ये भाव .... x x x दौड़ती हुई ट्राली के

---

1. नरेश मेहता : आधुनिक हिन्दी उपन्यास मे लेख ' एक रचना की प्रतिरचना — ' यह पथ बंधु था 'से-पृ0 152

के साथ, जैसे वर्षा भी भाग रही थी, पेड़ भाग रहे थे और पहली बार इन्दु के साथ सटे बैठकर श्रीधर का मन भी न जाने कहाँ भाग रहा था, जैसे एकाकी सारस सहसा खुले आकाश में वर्षा से घिर जाय और तब वह अपने पंखों को अजाने दिशा में चपेटे सहता हुआ चलने लगे। चारों ओर भीगती दिशाएँ हों। कोसों कोई गाँव न हो और तब उस नील वर्षा के झरते रहस्य को चीरकर कोई गाता हो। बस कोई एक गान ! । जिसे केवल वह एकांत सारस ही सुन रहा हो .... पृ0 62

श्रीधर के व्यक्तित्व में जिस रोमानीपन की अभिव्यक्ति हुई है उसमें उल्लेखनीय यह है कि उसमें रत्ना के रोमांटिक बोध की तरह कहीं भी भावुक उच्छृंखलता नहीं है। रत्ना तो अपने उद्दाम भावावेश को फाँसी पर चढ़ने से पूर्व व्यक्त कर जाती है किंतु श्रीधर का रोमांटिक बोध अत्यंत संयमित व संतुलित था, इसीलिये इतने अंतराल बाद दीदी से अकस्मात् भेंट उसे भावुक नहीं होने देता जिसकी पूरी संभावना थी।

उपन्यास की अन्य पात्र इन्दु दीदी है जिसके चरित्र में रोमांटिक बोध को आंकते हुए आलोचकों ने जैनेन्द्र के 'भाभीवाद' की तरह उसकी आलोचना 'दीदीवाद' के आधार पर की है। इन्दु राजकीय परिवार की भावुक कन्या है। '' उसका व्यक्तित्व अभिजात्य और सरलता, कलाप्रियता और विलासिता, स्वतंत्रता और मानसिक दमन के अनेक अंतर्विरोधी तत्वों की उपज है। ''[1] बचपन में माँ के प्रेम से वंचित रहने के कारण वह उपन्यासों के फैंटसीपूर्ण दुनिया में जीती है। उनकी संपन्न और सौन्दर्यवान नायिकाओं में स्वयं को खोजती है। उनके साथ घटी दुर्घटनाओं से व्याकुल हो जाती है तथा उनसे तादात्मीकरण करके उनके जीवन के प्रेम पक्ष की अनुभूति द्वारा अपने जीवन के अभाव की पूर्ति करती है। इसीलिये वह सोच कर व्याकुल हो जाती है कि " कोई किसी से प्रेम करता है तो उसके प्रति निर्मम कैसे हुआ जाता है।[2]

---

1. अधूरे साक्षात्कार : पृ0 45
2. यह पथ बन्धु था : पृ0 135.

जिस प्रेम के अभाव की यथार्थ पीड़ा को उसने भोगा था वह नहीं चाहती की श्रीधर भी उसे भोगे । वह जानती थी कि " अपने पूरे परिवार में श्रीधर कितना अकेला पन महसूस करता है । " इसीलिये श्रीधर के प्रति उसे गहरा स्नेह था । यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्यक्ति जिस वस्तु के अभाव में जीता है अपने प्रियजनों को उससे वंचित नहीं होने देता ।श्रीधर के प्रति उसके लगाव में ममता भी है और आकांक्षा भी । इसीलिये वह सोचती है कि " क्या श्रीधर के लिये वह बहुत कुछ नहीं रही ? क्या उसे यह सारी बातें नहीं स्मरण आएंगी ? जब सब बीत जाएगा तो क्या दूरागत होता हुआ विगत हमें उतनी ही तेजी से नहीं बांधेगा । " 1

श्रीधर के जीवन में अपनी महत्ता को आंकते हुए जो कि रूमानियत का ही प्रभाव है, वह कल्पना करती है — "मानलो कोई दुर्घटना उसके साथ घट जाए तो क्या श्रीधर को मर्मान्तिक पीड़ा नहीं होगी ?"

श्रीधर के समान ही वह भी भावुक है, इसीलिए कभी उसे अमिलीया झरने में बहती हुई दिखती है, कभी शकुंतला का विवश मुख घिरता सा लगता है तो कभी अग्नि में बैठी हुई जाज्वल्य सीता का परितप दिखता है ।उसमें भी कवि का सा भावोन्माद है इसीलिये आषाढ़ घिरने पर वह सशंकित हो जाती है कि उसे भी संदेशों की प्रतिक्षा न करनी पड़े और जब वह गाती है ' मोरे मंदिर अजहुं नहीं आए ' . . . . . तो उसका मन अज्ञात आशंका से कांप उठता है । प्रकृति के स्वच्छंद प्रांगण में भ्रमण करने की वह भी उत्सुक रहती है ।

इन्दु का इस तरह श्रीधर के साथ पहाड़ों पर, पठारों पर, एकांत में चांदनी रात में घूमना, श्रीधर को दुलारवश सटाना और चूमना, अकस्मात्

---

1. यह पथ बन्धु था : पृ० 137.

कल्पना में खोकर फूट पड़ना इत्यादि रूमानियत के ही लक्षण है । वस्तुतः उसका रोमानीपन अभाव, पीड़ा और एकाकीपन की ही उपज है । किंतु वैधव्य के यथार्थ को झेलने के पश्चात् वह जीवन की वास्तविकता से परिचित हो जाती है और संतुलित हो जाती है । यथार्थ का बोध और सत्य की अनुभूति होने पर वह समस्त सांसारिकता का परित्याग कर काशी वास करती करती है और श्रीधर को भी घर लौटने को कहती है ।

उपन्यास में वेश्या मालिनी का चित्रण तो स्वयं लेखक की रूमानी दृष्टि का परिणाम प्रतीत होता है । शरतचन्द्र की राजलक्ष्मी के ' पैटर्न ' पर लेखक ने उसकी सृष्टि की है जो अतिनाटकीय व फिल्मी प्रतीत होता है । उसके चरित्र में प्रेम पाने की और ममता लुटाने की जो अतृप्त आकांक्षा लक्षित होती है वह लेखक की रूमानी दृष्टि को ही सूचित करता है । कई स्थलों पर वह अत्यधिक काल्पनिक, रोमांटिक व अविश्वसनीय लगती है । बचपन में गुंडों के हाथों बेचा जाना, दीदी साहब द्वारा फिर वेश्या बनाना, वेश्या होकर भी पतिव्रत धर्म का सफलता पूर्वक पालन करना, पूजा पाठ, अर्चन-तर्पण, दान-दक्षिणा, आत्म-हत्या के प्रयास में बिशन द्वारा बचाया जाना, तत्पश्चात् बिशन से उसका ''भक्ति'' मोह, जीने की उत्कट अभिलाषा, ध्यानाकर्षित करने हेतु जानबूझकर बीमारी में दवा न खाना, नौकरों द्वारा उसका अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन करना आदि, उसके चरित्र का पूरा 'प्लाट' ही रोमांटिक बोध से ग्रस्त लगता है और यथार्थ से मीलों दूर प्रतीत होता है । उसकी सृष्टि लेखक की अपनी दृष्टि का परिणाम है । इसमें कोई संदेह नहीं ।

बिशन का भी मालिनी के विषय में अत्यधिक भावुक होकर सोचना, समाज की रूढ़ियों-प्रतिबंधों को अस्वीकार कर स्वच्छंद प्रेम का प्रदर्शन करना, उससे विवाह का प्रस्ताव करना रूमानियत का द्योतक है । ऐसा प्रतीत होता है लेखक ने जिस ' सेल्फ पीटी' को लक्ष्य बनाया था, उस तक पहुँचने के लिये

रूमानियत का सहारा लिया है । उल्लेखनीय है कि '' इस रोमांटिक रुझान के बावजूद यह उपन्यास निरा कल्पना, विलास और सस्ती, भावुकतापूर्ण कथा होने से बच गया है और एक कलात्मक उपलब्धि का रूप ले सका है ।''1

किसी भी उपन्यास की सफलता उसके यथार्थ होने या यथार्थ होने की संभावना में निहित होता है । इस दृष्टि से यह उपन्यास एक उल्लेखनीय कृति है क्योंकि इसमें व्यक्ति के यथार्थ को विविध आयामों में समाज के विस्तृत फलक पर चित्रित किया गया है । '' यथार्थ स्थिर और जड़ नहीं होता । वह गतिशील, परिवर्तनशील और व्यापक विकास प्रक्रिया का हिस्सा होता है । व्यक्ति जिस समाज और परिवेश में जीता है उसके यथार्थ का अनुभव अनेक रूपों में करता है।''2 इस उपन्यास में यथार्थ के विविध आयामों को चित्रित किया गया है । उपन्यास नायक श्रीधर के संबंध में यह बदलते आचरण में अर्थात असमानुपातिकता, निसंगता, राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक संस्थाओं में स्वार्थपरता, मूल्यों के प्रति अवज्ञा तथा विघटन के परिप्रेक्ष्य के रूप में चित्रित है, जो इस युग का भी यथार्थ है ।

उपन्यास में यथार्थ की शक्ति हम तभी पा सकते है जब उसके पात्रों द्वारा कहा गया प्रत्येक शब्द उनकी जीवन की परिस्थितियों द्वारा उन्हे विवश करके कहलवाया गया हो । उपन्यास नायक श्रीधर युग जीवन की पीड़ाओं से गुजरता हुआ, यथार्थ से जूझता हुआ, वास्तविकता को झेल कर जब पच्चीस वर्ष पश्चात बिना किसी उपलब्धि के पराजित और पराश्रित होकर घर लौटता है तो उसे अपना पुरुषार्थ नपुंसक प्रतीत होता है । तब उसके द्वारा कहे निम्न शब्द उसके जीवन के कटु यथार्थ को ही नहीं व्यक्त करते बल्कि उसकी विवश मनः स्थिति का भी द्योतक है ——

---

1. अधूरे साक्षात्कार : पृ0 49
2. मैनेजर पांडेय : साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका : पृ0 24।

x x x 'किसी को पुस्तकों के आदर्शों की कोई आवश्यकता नहीं सरो। जीवन पढ़ने वाला यह मारवाड़ी है जिसने तुम्हारे बगल में कोठी बनवाई है। तुम्हारी जेठ ने कोई किताब नहीं पढ़ी, इसीलिये वे सब सफल है, सुखी है xxx हमने तुमने पुस्तकें पढ़कर अपनी टपकती छतों को चूने से कैसे रोका जाय यह तो नहीं सीखा। कटोरियां या थाली रख कर वृष्टि की इन छलकती बूंदों को कहां तक रोकोगी प्रिये ? इसके लिए आदर्श पुस्तकें सब बेकार है। न टपकने वाली छत पुस्तक से, ईमानदारी से, आदर्श से नहीं बना करती।'[1]

अथवा

गुणी का निम्न कथन उसके ही नहीं जीवन के कटु सत्य को व्यक्त करता है —

'' जिजी, जीवन में न आंसुओं का मूल्य है न भावना का। केवल सहना ही सत्य है। बिना सहे तो कोई गति नहीं है x x x अपने प्रति भी निर्दय होना पड़ता है जिजी, हम सब सह रहे है x x अपने अपने ढंग से सह रहे है x x x जिजी, बोलने से व्यक्ति कमजोर बनता है इसीलिए मैं चुप रहती हूं। दुःख वाणी हीन होता है। x x x दुःख वह परमपद है जिसे स्वतः भोगना होता है। बाकी सब व्यर्थ है यहां। '' [2]

इस उपन्यास का यथार्थ बोध अत्यंत तीखा व प्रखर है। वह ऊपर से थोपा हुआ नहीं लगता बल्कि परिस्थितियों से स्वतः उद्भूत होता है और जीवन की वास्तविकता को उद्घाटित करता चलता है। श्रीधर की यातनाएं, उसका एकाकीपन और असहायहीनता आज के टूटते हुए व्यक्ति की कथा बन कर मानव की गाथा प्रस्तुत करता है।

---

1. यह पथ बंधु था : पृ0 576
2. यह पथ बंधु था : पृ0 488

''श्रीधर से जुड़े सारे लोग विषम परिस्थितियों में अपनी मानवीय संवेदना और स्वप्नशीलता लिए टूटन और थकन के इसी एहसास को घनत्व प्रदान करते है । श्रीधर के टूटने की कथा परिवार और समाज के टूटने की कथा बनती चलती है ।''(1) वस्तुतः इस कृति का समाज से जो संबंध स्वतः स्थापित हो जाता है वह इसके यथार्थ बोध और समानियत के प्रति सहयोग से उत्पन्न प्रभावोत्पादकता के कारण है । ''भावनाशीलता और संयम का यह संतुलन अपने आप में कोई नगण्य उपलब्धि नहीं है जिंदगी की अनगिनत छोटी-2 घटनाओं से इसका ताना-बाना बुना गया है । इसीलिये इसमें प्रस्तुत मानव स्थितियों में एक साथ ही भावगत उष्मा भी है और बाह्य यथार्थ की प्रमाणिकता भी जो उन्हे अपने स्तर पर पर्याप्त विश्वसनीय बनाती है ।''(2)

(क) यह पथ बन्धु था : अकेलेपन व अजनबीपन का अंकन

अकेलेपन, अजनबीपन अथवा परायेपन जैसी अवधारणाएं साहित्य में आधुनिकता के परिणाम स्वरूप आई । हिन्दू जीवन दर्शन में अकेलापन अथवा अजनबीपन आत्मा के स्वभाव के रूप में स्वीकृत है, किंतु अकेलापन केवल आत्मा की मादक अवस्था नहीं । आधुनिक परिवेश में यह ऐसे व्यक्ति की पीड़ा का भी द्योतक है जो मूल्यों के स्तर पर अकेला रहने को अभिशप्त है, या जो अपनी आदर्शवादिता के कारण वैचारिक ऐक्य स्थापित न कर पाने के कारण समूह से कट गया है अथवा समाजिकता को चाहने जिसे नष्ट कर दिया है ।

व्यक्ति में अकेलेपन, अजनबीपन अथवा परायेपन का बोध कहीं स्मृतियों के कारण, कहीं स्वभाव के कारण तो कहीं परिवेश व परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप होता है । आलोच्य उपन्यास में परिवेश के अलगाव को रेखांकित करते

---

1. रामदरश मिश्र : आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि, पृ० 221
2. विवेक के रंग : नेमिचन्द्र जैन

हुए व्यक्ति को केंद्र में रखा है । उपन्यास के पात्रों में लक्षित होने वाला अकेलापन अथवा परायेपन का बोध वस्तुतः परिवेश व परिस्थितियों के दबाव की ही उपज है ।

उपन्यास का नायक श्रीधर एक लंबे अंतराल बाद जब घर लौटता है तो स्वयं को पहलतू, अजनबी व अकेला महसूस करता है क्योंकि इतने अंतराल बाद उसके घर की परिस्थितियां बदल चुकी है — उसके भाई अलग हो चुके है, उसके माता पिता नहीं रहे, घर का बंटवारा हो चुका है और उसकी लड़कियों का विवाह हो चुका है । घर के इस परिवर्तित परिवेश को आत्मसात् करने के लिये श्रीधर मानसिक रूप से तैयार नहीं थे उसने इसकी कल्पना नहीं की थी । ऐसे में वे अपने ही घर में स्वयं को अकेला व अजनबी पाते है । घर के इस परिवर्तित परिवेश से श्रीधर यदि संगति नहीं स्थापित कर पाते तो इसके दो कारण हो सकते है — पच्चीस वर्षों पश्चात् घर की इस दुर्गति और जीवन में कुछ भी सार्थक न कर सकने का बोध उन्हें कचोट रहा था । इसीलिए श्रीधर इस टूटे घर में अंततः अकेले व अजनबी बन कर रह जाते है । (1)

श्रीधर के अकेलेपन व परायेपन के बोध में उल्लेखनीय यह है कि यह स्थिति उन्हें निकम्मा नहीं बनाती उसके अस्तित्व को नहीं मिटाती बल्कि उसे इतिहास लिखने के लिये प्रेरित करती है । उसका अकेलापन और उसका एकांत उसके लिए एक तरह से वरदान सिद्ध होता है क्योंकि वह न केवल विगत वर्षों की उपलब्धियों का विश्लेषण करता है बल्कि परिवर्तित परिवेश में इतिहास की समीक्षा कर पुनः मानव का इतिहास लिखने का निश्चय करता है । परिवर्तित परिवेश के परिणाम स्वरूप वह अकेलापन भोगने को अभिशप्त अवश्य है किंतु इसकी परिणति उसे एक सृजनात्मक उपलब्धि के रूप में होती है, जो संभवतः व्यर्थतता बोध और अकेलेपन के अभाव में न हुई होती ।

---

1. इंद्रनाथ मदान : हिंदी उपन्यास एक नई दृष्टि ।

श्रीधर के अकेलेपन में जितना परिवेश उत्तरदायी है उतना ही उसका अपना व्यक्तित्व व स्वभाव भी है। '' यदि उसके जीवन में संबंधहीन संबंध हैं और वह स्वयं को अकेला व पराया महसूस करता है तो यह सब कुछ उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। ''[1] श्रीधर ऐसा क्यों है ? इस प्रश्न पर एक आलोचक ने प्रकाश तो डाला है पर इसका उत्तर नहीं देते। वस्तुत: हम कह सकते है कि श्रीधर अपनी अत्यधिक आदर्शवादिता और असमझौतावादी प्रकृति एवं स्वभाव के कारण लोगो से कटता जाता है, समूह से विलग होकर वह अकेला, अजनबी और पराया हो जाता है। "आज का एक ईमानदार प्रबुद्ध और साधन विहीन मध्य वर्गीय व्यक्ति अपनी निजता को बचाता हुआ, अपने को अपने परिवेश से जोड़ता हुआ और जोड़ने की प्रक्रिया में निरंतर टूटता हुआ चलता है, उसके पास एक स्वप्न होता है, अभिमान होता है अपने को सार्थक करने का जो पग-पग पर आहत होता है और टूटता है। मूल्य तथा सार्थकता का बहुत बड़ा स्वप्न लेकर चलने वाला व्यक्ति अंत में अपने को चारों ओर से अकेला, हारा हुआ और अजनबी पाता है। वास्तव में भारत में अकेलेपन और अजनबीपन का यही स्वरूप है ''[2] जो आलोच्य उपन्यास में श्रीधर के माध्यम से व्यक्त हुआ है।

श्रीधर के व्यक्तित्व में अकेलेपन की झलक बचपन से ही देखी जा सकती है। इन्दु वैदी के चले जाने के बाद श्रीधर सहसा 'रिता' जाता है। इन्दु के चले जाने के बाद जिस 'निपट अकेलेपन'' की अनुभूति उसे होती है वह उल्लेखनीय है। उसे लगता है कि ——

'' वह घने अंधेरे बंद कमरे में घिरा हुआ है, सिर्फ ऊपर कहीं एक गवाक्ष है जिससे ऐसा प्रकाश आ रहा है जिसे आप देख नहीं सकते मात्र अनुभव कर सकते है। जिससे सिर्फ स्मृति आती है कि कल तक यहां सब कुछ था x x x अब इस कमरे में केवल आपकी आहट तथा दरवाजे पीटने की आवाजों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

---

1. इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि : पृ०75
2. देख 'स्वतंत्रता परवर्ती उपन्यास ' से : रामदरश मिश्र : पृ०121
3. 'यह पथ बंधु था' : पृ० 147

वह इतना अकेलापन महसूस करता है कि उसे लगता है '' वह दीदी के बिना जी नहीं सकेगा'' । इन्दु के चले जाने के बाद वह अपने को हमेशा के लिये अनाथ अनुभव करने लगा । ''[1] इस तरह अकेलापन श्रीधर के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग था जो बचपन से ही विद्यमान था इसीलिए उसके स्वभाव में अंतर्मुखता आ जाती है —

xxxx '' वह बोलता ही नहीं था लेकिन बोलता था तो बस बुदबुदाता कर रह जाता । जैसे अनुनय कर रहा हो । वह किसी के साथ अधिकार भाव से बात ही नहीं कर सकता था । वह कभी घर में किसी के साथ नहीं बैठ पाता था x x x x वह जैसे स्वयं को स्वयं की उपस्थिति तक का भान नहीं होने देना चाहता था । ''[2] स्पष्ट है कि परायेपन का बोध और अकेलापन उसमें बचपन से ही था । अपने अंतर्मुखी स्वभाव के कारण वह भीड़ में या समूह में बेचैनी अनुभव करता था, तभी भाई के विवाह में अधिक दिन रहने की सूचना उसे उदास कर देती है ।

जैसे-जैसे श्रीधर बड़ा होता जाता है यह अकेलापन उसमें और गहराता जाता है । और उसके उज्जैन पहुँचने पर वह इतना घनीभूत हो जाता है कि ' बाहर का निर्जन सन्नाटा भी श्रीधर को अपने अंदर धँसता महसूस होता है । उसे लगता है जैसे वह इस निर्जन एकाकीपन का सूना छोड़ है। ' जब यह अकेलापन अपनी पूरी भयावयता के साथ मूर्त होने लगता है तो श्रीधर को अपनी निरुद्देश्यता की भी प्रतीति होने लगती है । उसे स्वयं अपने ऊपर संदेह होने लगता है कि वह श्रीधर है या फिर कोई और । राबर्ट मैक्स्वर के अनुसार '' अजनबी व्यक्ति ज्यादा संवेदनशील प्रकृति वाले और

1. 'यह पथ बन्धु था ' : पृ० 148
2. वही : पृ० 151

प्रतिभाशाली होते है । वे चाहते है कि उनके जीवन का कुछ अर्थ हो, कुछ लक्ष्य हो तथा उसके जीने के पीछे किसी अच्छे उद्देश्य की प्रतीति हो । लेकिन प्राय: इस प्रकार की सोद्देश्यता खोजने वालो के साथ किसी न किसी प्रकार की गड़बड़ हो जाती है । ऐसे व्यक्ति जीवन मे ऊँचा लक्ष्य तो रखते है किंतु उनका लक्ष्य उनकी पहुँच से दूर रहता है । उनका असंतुष्ट, आहत प्यासा अहं पीछे ढकेल दिया जाता है और उनके आगे विराट खालीपन धीरे-धीरे पसरने लगता है अजनबी व्यक्ति इससे भागना चाहता है और इस भागने मे वह स्वयं से भागने लगता है । ''(1) वस्तुत: श्रीधर के साथ यही स्थिति है जो उसके व्यक्तित्व मे अकेलेपन, परायेपन व अजनबीपन को इंगित करती है ।

श्रीधर की पत्नी सरो भी कुछ सीमा तक इस स्थिति की शिकार है । श्रीधर के चले जाने के बाद वह अकेली असहाय हो जाती है । जिन आदर्शों आस्थाओ और विश्वास के साथ उसने श्रीधर के साथ अपना जीवन प्रारंभ किया था, वे सब श्रीधर के चले जाने के बाद धरे के धरे रह जाते है और वह भी निपट एकाकी हो जाती है । श्री मोहन, सरस्वती आदि का वर्तांव उसे अपने ही घर मे अजनबी बना देता है । उसके अकेलेपन की अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियो से हो जाती है x x x कमरे मे एकांत पा सरो रो पड़ी । उसे लगा कि वह जीवन भर विवश ही रही । विवशता से उसे कोई मुक्ति नही । उसने कितनी भावनाओं से साथ जीवन आरंभ किया था । '' x x x x सरो बड़ी देर तक रोती रही । कभी सुखद कभी दु:खद भावनाओं मे डूबी, मन की शहतीरो मे कोई छेद खोजती रही, ताकि न सही पूरा आकाश तो कम से कम आकाश का कोई तितली की तरह छोटा सा नीला टुकड़ा ही दिख जाय — और बंधी हुई दृष्टि को पंख मिल सके । ''

---

1. मैन एलोन : : एलिएनेशन इन मार्डन सोसाइटी, पृ0 168

श्रीधर की पुत्री गुणी अपनी अल्प आयु में समाज की विसंगति का शिकार होकर जीवन में आघातों को झेलती हुई अपने को परिवार और समाज से काट लेती है । वह सब की बातों का उत्तर केवल फटी-फटी आँखों से देती है और स्वयं अपने से भी अजनबी हो जाता है । उसका कांता से यह कथन की '' जब व्यक्ति को शुरू दिन से बहुत कुछ देखना पड़े तो उसकी वाचा चली जाती है '' उसके अकेलेपन और विक्षिप्तता का द्योतक है ।

श्रीधर के परिवार में जैसे-जैसे संबंधों की आत्मीयता रिसती जाती है, संबंधहीनता पनपने लगती है और संबंधहीनता जन्म देती है अकेलेपन के बोध को । श्रीधर के वृद्ध माता-पिता अपनी वृद्धावस्था में ही घर के परिवेश में अपने को अकेला, कटा हुआ व उपेक्षित महसूस करते है । इस तरह पारिवारिक स्तर पर उभरती हुई संबंधहीनता व हृदयहीनता अपने ही घर में सब को अजनबी अकेला व पराया बना देती है ।

उपन्यास की अन्य पात्र इन्दु के संदर्भ में भी इस रिक्तता को देखा जा सकता है । इन्दु का श्रीधर को लिखा गया पत्र उसकी विक्षिप्तता और विवाहोपरांत अकेलेपन का द्योतक है । समस्त सुख, साधन, ऐश्वर्य और वैभव के होते हुए भी उसे अंतहीन व खालीपन की अनुभूति होती है ।संबंधों की चाह और रिश्तों की तलब ऐश्वर्य और साधनों से नहीं पूरी होती इसी लिये वह श्रीधर को पत्र में लिखती है — ' मेरा यहाँ क्या प्रयोजन है यही समझ में नहीं आता, तेरे जीजाजी मुझे जानते है, यह कैसे कहूं जबकि मुझे ही वह कितना जानते है, यह स्वयं मुझे ही नहीं मालूम ।''

अकेलापन कुछ विशेष परिस्थितियों में व्यक्ति को 'स्व' की परिधि से निकाल कर उसकी आत्मीयता के क्षेत्र को बढ़ा देता है । बचपन में माँ

के प्रेम से वंचित इन्दु का उपन्यासों की नायिकाओं से तादात्मीकरण कर फैंटसी पूर्ण दुनिया में जीना जहाँ एक ओर रूमानियत का सूचक है वहीं दूसरी ओर अकेलेपन का भी है क्योंकि कल्पना के मूल में अकेलेपन का बीज भी विद्यमान है। इन्दु व श्रीधर का प्रकृति के प्रति रूमानी आकर्षण के मूल में भी अकेले पन की अनुभूति विद्यमान है। दोनों वैयक्तिक स्तर पर अकेले थे इसीलिये प्रकृति का साहचर्य उन्हें भावाकुल कर देता है।

मालिनी जो की वेश्या है दीघे साहब के गुजर जाने के बाद अकेली हो जाती है। उसके अकेलेपन के मूल में समाजिक पृथकता (**Social Isolation**) भी एक कारण है। अकेलेपन का चरम रूप उसमें तब लक्षित होता है जब वह आत्म हत्या का प्रयास करती है। उसके अकेलेपन का एक अन्य पक्ष भी है जिसकी अभिव्यक्ति वह किशन पर अपनी ममता व अधिकार जता कर करती है।

इस उपन्यास में अकेलेपन व अजनबीपन के बोध को भारतीय दृष्टि व अनुभव के परिप्रेक्ष्य में देखा गया है इसीलिये वह अस्तित्ववादियों से भिन्न है। कुछ आलोचकों ने इसके अधिकांश पात्रों में अकेलेपन व अजनबीपन को देखते हुए अकेलेपन के बोध को इस उपन्यास का मूल स्वर माना है। यद्यपि इसके सभी पात्र कुछ सीमा तक अकेलेपन व अजनबीपन के शिकार है लेकिन इसे उपन्यास का मूल स्वर मान लेना ठीक नहीं क्योंकि वह परिवेश जनित व स्वभाविक है।

xxxx0xxxxx

चतुर्थ अध्याय

'यह पथ बन्धु था'– शिल्प एवं प्रयोग

'यह पथ बन्धु था'– शिल्प एवं प्रयोग

किसी भी कृति के कथ्य व शिल्प परस्पर अनुस्यूत होते है । नए परिवेश में नया कथ्य नए शिल्प की माँग करता है । नरेश मेहता मूलतः एक प्रयोगवादी कवि है इसीलिये उनकी कृतियों का शिल्प निरंतर तराशी जाने की प्रक्रिया है । उनके शिल्प में एक अद्भुत सम्मोहन है । उनका आलोच्य उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' जहाँ साधारण मनुष्य के टूटने की अटूट व्यथा, मानवीय संबंधों के चुकने की पीड़ा और जीवन मूल्यों के प्रति अवज्ञा का द्योतक है वहीं शिल्प की दृष्टि से एक उल्लेखनीय कृति भी है । ''यह उपन्यास अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों पर एक ऐसा आंतरिक सामंजस्य है जो हिन्दी कथा साहित्य में नए आयाम का सूचक है ।''[1]

आलोच्य उपन्यास का नामकरण बंगला के कवि श्री विनोदचन्द्र नायक की एक कविता के आधार पर हुआ है जिसका सारांश है कि इस पथ से अपने व्यक्तित्व की मधुरिमा लुटाती हुई ग्रामवधु प्रवेश करती है तथा अपने परिजनों का सुख भोगकर इसी पथ से लौट जाती है । यह पथ आने वाले का साक्षी है और जाने वाले का बन्धु है । इस उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है । इसमें 'पथ' शब्द का सांकेतिक अर्थ ग्रहण किया गया है । यहाँ 'पथ' जीवन का प्रतीक है । उपन्यास का शीर्षक कथानायक श्रीधर और उसकी पत्नी सरी दोनों के जीवन के संदर्भ में सत्य प्रतीत होता है । पच्चीस वर्ष पूर्व जब श्रीधर घर से गया था तब उसके अटूट आदर्श और अडिग निष्ठा ही जीवन पथ पर उसके साथी थे । लेकिन

---

1. अधूरी साक्षात्कार – नेमिचन्द्र जैन : पृ० 54.

पच्चीस वर्ष बाद जब वह घर लौटता है तब जीवन में संपूर्ण रूप से पराजित और अकेला है । उसकी निष्ठा डगमगा गई है, आदर्श खंडित हो चुके है । उसका अंतर्द्वन्द्व इस बात का साक्षी है कि अपने आदर्शों से उसका विश्वास उठ चुका है – जिससे विश्वास उठ जाय वह बन्धु नहीं होता । इसीलिये उपन्यास के शीर्षक में 'है' के स्थान पर 'था' शब्द है ।

शीर्षक की सार्थकता उसकी पत्नी सरो के सन्दर्भ में भी सत्य प्रतीत होती है । घर लौटने पर श्रीधर की पत्नी 'सरो' मरणासन्न अवस्था में मिलती है जिसकी मृत्यु को चुपचाप स्वीकारने के सिवाय कोई गति नहीं थी । जैसे पच्चीस वर्षों से इसी महायात्रा के लिये वह उनकी प्रतीक्षा कर रही थी । पालकी में बैठ कर वधू बनी सरो, बस्ती के जिस पथ को साक्षी बना कर आई थी उसी पथ से परितापरहित मन सब को बन्धु बनाकर लौट गई । एक आलोचक के अनुसार – 'पत्नी की मृत्यु के बाद श्रीधर अकेला निस्सहाय पथ बंधु सा – राही सा हो जाता है ।''[1] ''उसकी नियति, कोई घर, कोई बसेरा नहीं । एक अंतहीन निरुद्देश्य भटकाव मात्र है ।''

जिस प्रकार इस उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है उसी प्रकार इसका अंत भी प्रतीकात्मक है । स्वयं नरेश मेहता के शब्दों में ''जिस समय श्रीधर मनुष्यता का इतिहास लिखने का संकल्प करता है वह पात्र या चरित्र न रहकर संघर्ष करती संपूर्ण मानवीय चेतना का वैष्णव प्रतीक बन जाता है ।''[2]

---

1. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास – पार्श्वनाथ देसाई, पृ.
2. हिंदी उपन्यास : उत्तर शक्ति की उपलब्धियां – विवेकी राय

कुछ आलोचकों ने इसके अंत को लेकर आपत्ति उठाई है । उनका कहना है कि – ''इसका अंत उपन्यास के भीतर से नहीं निकलता है, उस पर आरोपित लगता है, उस पर चिपकाया गया है । पूरी संरचना में इसकी संगति नहीं बैठती । इस अंत बोध में आधुनिकता की प्रक्रिया ठप हो जाती है । इस तरह का समापन हिन्दी उपन्यास को कमजोर बनाता है ।''[1] किसी को वह ''कलात्मक रचाव को ठेस पहुंचाता हुआ अनर्गल व अनावश्यक प्रतीत होता''[2] तथा कुछ का मानना है कि यदि उपन्यास का अंत इन शब्दों से होता है कि 'वे लिख रहे थे' तो उपन्यास अनावश्यक समापन से बच सकता था और अनुभूति की धारा जिसे बंद करने की कोशिश की गई है उपन्यास के बाहर हो सकती थी ।''[3]

इन सब आपत्तियों के निराकरण का प्रयत्न पूर्व अध्याय में किया गया है तथापि इसके आस्थावादी, आरोपित अंत के विषय में यह तर्क भी दिया जा सकता है कि लेखक कथानायक को पराजित दिखा कर भी उसकी पराजय स्वीकार नहीं करना चाहता अन्यथा वह श्रीधर को आत्मघात करता दिखा सकता था, डाकू बना सकता था या विक्षिप्त बता सकता था । किंतु वह

---

1. हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि – इन्द्रनाथ मदान
2. नेमिचन्द्र जैन : अधूरे साक्षात्कार – पृ052.
3. हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख

तो उसे पराजित दिखा कर भी सृजन में प्रवृत दिखाता है क्योंकि उसे आस्था है — जीवन में, सत्य में और शाश्वत मूल्यों में । यह भी संभव है कि लेखक ने इस प्रकार के अकस्मात असाधारण अंत द्वारा मानव जाति के मानस को चुकते जीवन मूल्यों के प्रति सचेत कर झकझोरना चाहा है । नरेश मेहता का मानना है कि ''मानव मात्र का संपूर्ण जीवन साहित्य की परिधि में आता है । साहित्यकार जीवन से सीखता है तथा उसी को पुनः सिखाता है इसीलिये साहित्य में निषेध कुछ भी नहीं है;'[1] फिर चाहे वो ऐसा अंत ही क्यों न हो ।

इस उपन्यास के शिल्प की विशिष्टता उसकी सरलता में है । ''उसके वर्णनों में, कथा के संबंध सूत्रों में प्रवाह है, निरंतरता है और बीच बीच में तीव्र सघनता भी है ।''[2]

इसके शिल्प पर छायावादी काल की अलंकृत शैली का प्रभाव भी देखा जा सकता है ।

भाषा :

नरेश मेहता के अन्य उपन्यासों की तुलना में यह उपन्यास भाषा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है । इसकी भाषा अंतस की भाषा है । श्रीधर की बेचारगी और टूटन, सरो की विवशता और सावित्री की कुढ़न, कांता की चंचलता और गुणी का घुटन इसकी भाषा द्वारा ही व्यक्त हो पाया है । उपन्यास में प्रत्येक पात्र के भावों के अनुरूप भाषा का रूप बदलता है बल्कि

---

1. तथापि : निवेदन, पृ० 1.
2. नेमिचन्द्र जैन : अधूरे साक्षात्कार : पृ 52

पात्रों की भाषा और संवाद द्वारा उनकी मन: स्थिति को समझा जा सकता है । इस उपन्यास की भाषा गहन और जटिल मानवीय अनुभवों को व्यक्त करने में समर्थ है । भाषा अपनी शक्ति द्वारा परिवेश को साकार करती चलती है —

''घर का वातावरण कसे हुए तबले की भांति लग रहा था । बस छूने भर की देरी थी कि सब कुछ एक साथ ही एक बारगी बज उठेगा ।''

पात्रों की आंतरिक छटपटाहट, संवेदनात्मक स्तर पर आपसी टकराहट और विस्फोट को सम्प्रेषित करने का श्रेय इसकी भाषा को ही है । कांता का गृह से निम्न कथ अनुपयोगी और स्वार्थपूर्ण संबंधों को ढोए जाने निरर्थक स्थिति को कितनी मार्मिकता से उद्घाटित करता है —

''कांता । तुम नहीं जानती जब व्यक्ति को शुरू दिन से बहुत कुछ देखना पड़ जाए तो उसकी वाचा चली जाती है । x x x x विभिन्न कड़ियां हैं हम सब । कि भिन्न-भिन्न हो जाने के लिये आतुरता से अपनी अपनी दिशा में जोर लगा कर टूट जाना चाहती हैं ।''

मालिनी की निम्न पंक्तियां उसकी व्यथा को साकार कर देती हैं —

''हां । मैं पथभ्रष्टा हूं । x x x x वेश्या का मन कीड़े खाए ऊनी कपड़े की तरह होता है बिमन ।''

इस उपन्यास की भाषा की अन्य विशिष्टता है कि इसमें छायावाद का दार्शनिक पुट है जो पात्रों की भावात्मकता और कथ्य की संवेदना को और तीव्र कर देता है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित अंश देखें —

''कितना छोटा है व्यक्ति रत्ना । कि मकड़ी के जाले की भांति अपने ही चारों ओर सब कुछ देखना चाहता है ।''

x x x x

''पुण्य तो क्षणिक होता है लेकिन पाप अनंत होता है । स्मरण के लिये पुण्य नहीं बना वह तो पाप है । खासकर दूसरे का पाप जो कि याद रखा जाना चाहिये ।''

''कैसी प्यास है जीवन की किशन । घिसटते कुत्तो और मनुष्य में कोई अंतर नही रह जाता । हम निरे ढोंगी है x x x दुःख का ढोंग करते है कि सामने वाला व्यक्ति हमे अपनी दया के अंचल में ले ले ।''

x x x x

''जीवन तो महाप्रस्थान का पथ है जहाँ कि हिम में प्रत्येक संबंध जो कि बाधा होता है गल जाता है ।''

x x x x

''जीवन में आंसुओं का मूल्य है न सत्य का । केवल सहना ही सत्य है ।''

x x x x

''दुःख वाणीहीन होता है । दुःख ही वह परम पद है जिसे स्वतः भोगना होता है बाकी सब व्यर्थ है यहां ।''

इस प्रकार मेहता जी ने इस उपन्यास में जीवन-जगत, सुख-दुख, संसार की परिवर्तनशीलता, युद्ध की शाश्वतता आदि की अभिव्यक्ति में दार्शनिक चिंतन के अनुकूल गाम्भीर्यपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है जो एक अमिट प्रभाव की सृष्टि करता है ।

इस उपन्यास के शिल्प में लेखक के संयमित प्रयोग के कारण ही भाषा में कलात्मक अन्विति आद्यंत बनी रहती है । ''रोमांटिक रूझान के बावजूद यह उपन्यास निरा कल्पना विलास और सस्ती भावुकतापूर्ण कथा होने से बच गया है और एक कलात्मक उपलब्धि का रूप ले सका है ।''[1]

---

1. विवेक के रंग – नेमिचन्द्र जैन

भाषा अपने विविध रूपों में उपन्यास को गति प्रदान करती है। इसमें जहाँ एक ओर भाषा भावात्मक है वहीं दूसरी ओर सपाट और वर्णनात्मक भी। जैसे काशी के वर्णन में —

''गर्मियाँ आ गई थी। धूप तेज हो गई थी। गंगा की बालू चिलचिलाती दूर तक बिछी थी। राम नगर का किला उस पार की कछार की एकांतिकता को भंग करता धूप में गरम होता लग रहा था।''

x x x x

''तुलसी घाट उदास पड़ा था।''

x x x x

केदार घाट की इतनी सारी सीढ़ियों में कैसा मध्यकालीनत्व झलक रहा है, जैसे इतिहास हो और दो-चार चढ़ती उतरती वृद्ध बंगालिनें छोटी मोटी घटनाएँ लग रही थी।''

भाषा की चित्रात्मकता जगह-जगह दृश्यों को मूर्त कर देती है। उदाहरण के लिये निम्न अवतरित पंक्तियों में मानवीय अनुभाव सहज ही आँखों के समक्ष आ जाता है —

''आज पहली बार मेरे मुंह से ''दीदी'' सुन पहले तो वे आँखें चमकीं उपरांत हौले से कचनार के फूलों सी फैल आईं। तब क्रमश: भीतरी कोनों से जल छल-छलने लगा, जिसे स्वल्प काँपते होठों को अंदर ही दाँतों से दाब रखने की चेष्ठा की जा रही थी लेकिन नाक दोनों ओर से फैल आने लगे। वे आँखें फैली बाँहें थी जिनमें आवाहन निषेध स्पष्ट था। x x x अपने में समा लेने का अजीब सम्मोहन उन जलभरी आँखों में वैसे ही तिरता लग रहा था जैसे झील में पुरइन का पत्ता तिर आया हो।''

उपन्यास में छायावादी अलंकृत शैली के प्रभाव के कारण अलंकार,

प्रतीक बिंब स्थान-स्थान पर बिखरे पड़े हैं। कथाकार ने जिन बिंबों का प्रयोग किया है वे अधिकांशतः प्रकृति पर आधारित हैं जैसे —

1. कंचना सारस्वती पीलि कनेर सी लग रही थी।
2. दीदी फीकी-फीकी हंसती होती जैसे ज्येष्ठ सन्ध्या।
3. सादी धोती में वह भोर के गोरे होते हुए आकाश सी लग रही थी।
4. उन्होंने सारस्वती की ओर देखा जैसे रितया बादल देख लिया हो।
5. उस कमरे में श्रीधर ने देखा कि इन्दु पुरइन का सबसे बड़ा पात लग रही थी।

जगह-जगह अलंकारों के प्रयोग से भाषा सरस व भावात्मक हो उठी है और कई जगह कथानक की एकरसता को सरसता में परिवर्तित कर देती है। उदाहरण के लिये निम्न पंक्तियों में धूप का मानवीकरण का अत्यन्त मनोरम दृश्य लेखक ने प्रस्तुत किया है —

(1) "वह रंगीन धूप धीरे-धीरे पहाड़ी से उतरती है और झील के जल में थोड़ी देर के लिये गायब हो जाती है। x x x कैसी गोरी-गोरी धूप झील में तैरती हुई उसकी तरफ आती है। धूप तब बहुत नज़दीक आ जाती है। उसमें अनेक तारों की जैसी आंखें निकल आती हैं। जो हंसती हुई उसे संकेत करती है, पास बुलाती है। वह जैसे ही हंसती हुई आंखों वाली उस धूप की तरफ बढ़ता है वह और दूर और दूर सरकती जाती है और फिर वापस झील में कूद पड़ती है।"

(2) "खिड़की की राह तीसरी पहर की धूप सोते हुए श्रीधर बाबू पर पत्नी की भांति झुकी गरमाती रही।"

लेखक ने शब्दालंकारों व अर्थालंकारों का यथास्थान प्रयोग किया है किंतु प्रतीत होता है कि उपमालंकार के प्रति उनका विशेष मोह रहा है। नवीन उपमाएं गढ़ कर उन्होंने अपनी प्रयोगात्मकता का सफल परिचय दिया

है । उदाहरण के लिए —

1. तलहटी की भीगी सीपी जैसी निश्छल आँखे ।
2. सड़के कोट की खाली बाँहों सी फैली थी ।
3. रविवार का दिन जैसे शेव बढ़ा मुख हो ।
4. बांध के दूसरे तरफ चाँदनी सलवटहीन चादर की तरह फैली हुई थी ।
5. काली चट्टानों पर सामने का गाँव मधुमक्खी के छत्ते सा दिखता ।

उपमा के अतिरिक्त दृष्टांत अलंकार – ''दुकानें हनुमान की तरह छाती खोले चीजे रखी सीता-राम का प्रदर्शन दिनभर करेंगी ।

उत्प्रेक्षा :''वे आँखे चमकी उपरांत हँसी से कचनार के फूलों की तरह फैल आई ।''

विशेषण विपर्यय: ''रात आमको समेट कर भय की गठरी की तरह एक स्थान पर केन्द्रित कर देती है ।''

अथवा

उसकी हल्की मुस्कान वैसे ही दिपा उठी जैसे गर्मियों के संध्याकाश में फीका किंतु ज्योतित तारा ।''

अमूर्त के लिये : ''अँधेरा घरों के बाहरो बंद दरवाजों पर
मूर्त उपमान पोस्टरों सा चिपका था ।''

मूर्त के लिये: ''रविवार के दिन भी लोग होते है लेकिन वैसे ही जैसे
अमूर्त उपमान लान्ड्री में रखी तह की हुई सफेद कमीजे मेल धुली कमीज़ ।''

मानवीकरण : ''तेल खाना रोड का सिख मंदिर पलकें मींचे मुख सा मौन था ।''

''रामचन्द्र फोटोग्राफर की प्रसिद्ध दुकान झालरियों में वैसी बंद लग रही थी जैसी फैलती उंगलियों में किसी ने मुख छिपा रखा हो।''

कथाकार ने अनेक जगह अर्थगांभीर्य के उत्कर्ष की सृष्टि के लिए भाषा को लाक्षणिक भंगिमाओं से सप्राण किया है – जैसे

''दीदी की जलती कड़वी पलकें इसी अंधेरों में पटी-पटी सी कुछ सहारे के लिये अंधी चिमगादड़ों सी, इन दिवारों पर अंधेरा टटोलती छिपकली सी रेंगती रहती होगी।''

''औरतों की बातें भंवर का पानी होती हैं।''

''वह संपत्ति कौरवों के बीच द्रोपदी सी असहाय थी।''

बिंबों के प्रयोग में लेखक ने दृश्य, श्रव्य व प्राकृति के विराट बिंबों की संयोजना की है –

''कमल के हंसते दांत ऐसे लगे कि किसी ने जैसे अंधेरे कमरे की सारी खिड़कियां खोल दी हों।''

''बिपिन की बातें खो गईं जैसे जंगल में वाक्य खो गया हो।''

''उसका हंसता मुख जैसे वीरान मेराबदार बावली में कोई दीपक अंधेरे से जूझ रहा हो।''

''बिना काजल अंजी आंख सा संध्याकाश और उसमें आंसू सी टिकी संध्या।''

प्रतीक – ''जैसे अंधेरा बढ़ता जा रहा था, भय भी बढ़ता जा रहा था संशय भी।''

लोकोक्तियों और **मुहावरों** का भी भाषा में यथास्थान प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिये –

1. अल्ला की गाय लगने वाले भैया
2. रोज खाना दोनों जून बनाना .... पृ0 47
3. वे गले गले हो आए .... पृ0 46
4. लाल पीले होना .... पृ0 70
5. चेहरा भय से पीला पड़ना .... पृ0 70

6. किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाना .... पृ0 102
7. धाड़ मार कर रोना ... पृ0 221
8. काठ हो जाना ... पृ0 220
9. कटी अंगुली पर पेशाब न करना . ... पृ0 327
10. स्वांग भरना ... पृ0 256
11. हथेली पर सरसों जमना ... पृ0 324
12. चूहे की चिंदी क्या मिली बजाज बनने चला ... पृ0 331
13. दूध की मक्खी की भांति अलग कर देना ... पृ0 335
14. होम करते हाथ जलना ... पृ0 351
15. तिल की ओट पहाड़

उपन्यास के कथानक को यथार्थमय करने के लिये तथा स्वभाविकता के उद्रेक के लिये कथाकार ने भाषा में आंचलिक शब्दों का अत्याधिक प्रयोग किया है। बंगाली पात्र बंगला शब्दों का प्रयोग करते हैं —

— ''शुभ्रदा — तोमार सगे ए तोमार बन्धु''

— ''तुमी आमार शामी''

— ''ऐ कि होच्यो ? xx ए कि करच्यो तुमि ?''

पारसी महिला मिस एल्ची की भाषा में पारसी टोन है —

— ''आजकाल ओ भौत घूमने को लगेला है ?

औ तुम उसको काय को नेई समजाता के ईस राजनीति में क्या धीला है ? ओसका मगज फरेला है।

काशी में रामखेलावन बाबू की पूर्वी हिन्दी का मिश्रित रूप देखा जा सकता है—

''लीजिए पनवा जमाइये x x लेकिन आपके तो एकदम्मे बाल सफेद हो गए।

''ए सास्तरी जी ... औ आपे इज दाहिनी सीढ़ी से उपर चले जाइये

सबसे पीछे वाले कमरवा में पूछ लीजिएगा ।''

महाराष्ट्री पात्रों द्वारा मराठी भाषा का प्रयोग हुआ है –
''आता काही काम नाही आहे । तुमी जाऊ शकत ।''

इस प्रकार स्थानीय आंचलिकता का भाषा में प्रयोग परिवेश व प्रभाव को बढ़ाता है । इसके अतिरिक्त भाषा में देशज, विदेशज, तत्सम अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है ।

नरेश मेहता मूलतः एक कवि हैं और इस उपन्यास की ''भाषा में कविता की लटके है जो कभी कभी जीवन की अछूती परतों को इस तरह छू जाती है कि भाषा शैली की सघनता और तीव्रता में विकास आने लगता है ।''[1] इसकी कवित्वमयी भावात्मक भाषा तरलता और सूक्ष्मता का संचार करने के लिये सहज रूप से आती है और पाठक को भावाकुल कर सहज रूप से चली जाती है । निम्न उदाहरण इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है –

''सरस्वती हठात् रोने लगी, वे अमाद सिहर उठे । बाहर श्रवण बरस रहा था और सारी अषाढ़ बनी हुई थी । x x श्रीधर बाबू इन आंसुओं में जन्म जन्म के श्रावण नहा गए ।''

x x x x x

''फूल की रेशों सी नरम बारीक धन धूल बिलकुल खरगोश सी मेमने चुप आकर बिछल जाती है । यदि समय से धूल का यह रेशमी जाल हम नहीं काट फेंकते तो वह एक दिन हमारे समूचे अस्तित्व के जोड़-जोड़, पोर-पोर में रक्त मांस को चाट कर मिट्टी कर देता है । इसीलिये हम बार-बार स्मृतियों को दुहरा कर अपने अंतस की धूल झाड़ते है ।''

---

1. इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि : पृ० 75.

''यह मन और हृदय की भाषा है, चिपकने वाली कवित्वमयी भाषा स्वयमेव स्पष्ट होती चलती है ।''[1]

निम्न उदाहरण में ''मनुष्य की विवशता'' का चित्रण जिन सशक्त शब्दों में हुआ है उसमें भाषा की व्यंजना शक्ति देखी जा सकती है —

x x x x लेकिन लोग जब कुछ नहीं होता तब बहुत कुछ सुन लेते हैं, हथेली पर सरसों जमा ली जाती है, भला जब सरे आम मौका हो, स्थिति हो और हो आपकी विवशता तो आप उस फेंके गए हड्डी के व्यर्थ टुकड़े होते हैं जिसमें कोई मांस नहीं होता, फिर भी कुत्ता है कि आपको लार टपकाता । इस दाढ़ से कभी उस दाढ़ से चबाने में लगा है । जब आप चब नहीं उठते तब तक आपकी निष्कृति नहीं । भले ही आप कुत्ते के दाढ़ का रक्त निकाल कर अपने को रक्तमय कर ले, और जब कुत्ते को आप में से रक्त का स्वाद आने लगता है तब वह किस गर्व से आपको चूस कर फेंक देता है । एक विजेता की भांति कि बच्चू आखिरकार तुममें रक्त था और उसे मैंने चूसकर ही दम लिया । प्रत्येक विवशता वही हड्डी का टुकड़ा है ।''[2]

इस उपन्यास की भाषा में संवेदनात्मकता के साथ लयात्मकता और कोमलता भी है —

''किनारे पर एक नगाड़े वाला किड़किम् धाम - किड़किम् धाम की आवाज़ में पीटे जा रहा था । उसका एक साथी कान पर हाथ रखा बड़ी जोर से चीखा जा रहा था —

कलकत्ते की कालिका
और पहाड़ पर किलकाय
अब आते हैं साथियों
अमर सिंह जी राय ।

---

1. विवेकी राय : हिन्दी उपन्यास : उत्तरशती की उपलब्धियाँ - पृ० 135.
2. यह पथबन्धु था - पृ० 324

और किड़किट किड़ किट, किड़ोड़ी किड़ोड़ी किट किट धाम, किड़ किड़ धाम धाम धाम ।''

आलोच्य उपन्यास में लेखक ने भाषा को विषय और स्थिति अनुसार गति प्रदान की है । कहीं कहीं छोटे छोटे वाक्य हैं तो कहीं कहीं लम्बे कवित्वपूर्ण वाक्य । भाषा में सूत्र वाक्यों की प्रवृत्ति भी दिखती है जैसे –

1. लोक मुखा की आँखें नहीं होती मात्र जिह्वा होती है
2. दिन, सुख और लक्ष्मी जाते देर नहीं लगती
3. साधन हीनों के लिये आदर्श शक्ति नहीं, विवशता होती है
4. औरतों की बातें भंवर का पानी होती है । ..... आदि ।

शिल्प की इन विशिष्टताओं के साथ इसकी भाषा में कहीं-कहीं शिथिलताएँ भी लक्षित होती हैं । लेखक की प्रयोगात्मकता से इन स्थलों पर भाषागत अन्विति को आघात पहुँचा है जैसे –

– वह खिसमिने लगी

– लक्ष्मन ने प्रवेशा

– इन्दु ने श्रीधर की चिल्लाहट सुनी

– जिस पर मैं शुरू दिन बैठा था

– चित्र प्रेमित थे

– सरोमुख की सिसकियाँ ..... आदि ।

''इस प्रकार 'सरोमुख' का प्रयोग 'गोमुख' का सा आभास देता है । सासू मुख, दीदी मुख ये सब कहीं न कहीं हास्यास्पद मालूम पड़ते हैं ।''

x x x x x

सरो-मुख खिल खिला कर आंचल की ओट से हंस रहा था । यह वाक्यांश कुछ ऐसा लगता है कि जैसे सरो कहीं और थी और सरो मुख कहीं रह गया था जो आंचल की ओट से खिलखिलाकर हंसे जा रहा था ।''1

---

1. गिरिराज किशोर : आधुनिक हिन्दी उपन्यास . पृ0 166.

इस उपन्यास में नरेश मेहता का प्रकृति के प्रति अत्यधिक मोह देखा जा सकता है जो छायावादी कवियों की एक विशिष्टता थी । उपन्यास के चार मुख्य खंडों के बीच जो उपखंड आए हैं उनका आरंभ प्रकृति चित्रण से हुआ है या सूत्र वाक्यों द्वारा जो एक प्राचीन शैली है । ''पूरी शैली में एक प्रकार की पुरातनपन की गूंज जैसी है जो कथा के काल और विषय के अनुरूप और अनुकूल होने के कारण अच्छी लगती है ।''[1]

इस प्रकार प्राचीन और नवीन के सामंजस्य की प्रयोगात्मकता उनकी शैली में भी लक्षित है । शिल्प में भी दो विरोधी कोटियों के सामंजस्य को दिखाते हुए वे चरित्र प्रधान उपन्यास में अद्वितीयता की सृष्टि करते हैं ।

उपन्यास के पूर्वार्द्ध की कथा धीरे-धीरे स्मृतिलोकन द्वारा बढ़ती है । ''उपन्यास में पीछे मुड़ मुड़ कर देखने की प्रवृत्ति इसकी शिल्पगत विशेषता है ।''[2] यहाँ 'फ्लैश बैक' शैली का प्रयोग हुआ है । जैसे-जैसे कथानक में तीव्रता आती है शैली भी बदल जाती है । कहीं वर्णन, गुणी के ब्याह का वर्णन, साहित्य गोष्ठियों आदि के वर्णन में वर्णनात्मक शैली का व चित्रात्मक शैली का प्रयोग हुआ है । उपन्यास के अंत में जैसे-जैसे कथा फिर मंद होती जाती है शैली पुनः अपना रूप बदलती है । उपन्यास के अंत में आत्मविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग हुआ है । ''इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि अपनी इतिहास शैली का अंतर्मुखी चित्रण, खंड दृश्य चित्रण और रिपोर्ताज में ढाल कर तथा अत्यंत आकर्षक बना कर उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है ।''

निष्कर्षतः इस उपन्यास के शिल्प में जहाँ एक ओर छायावादी मसृणता है वहीं दूसरी ओर नई कविता की सहजता भी है । कृतिकार ने

1.

2 इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि पृ० 75.

इसके शिल्प को यथार्थ और प्रयोग के प्रति सहयोग से अत्यंत विश्वसनीय बनाया है इसीलिये इन शिथिलताओं के बावजूद भी यह यथार्थ की गरिमा से युक्त है । परमानंद श्रीवास्तव ने इसमें यथार्थ और कवि दृष्टि दोनों को एक साथ देखा है । समकालीन जीवन की विडम्बना को पूर्णतया पकड़ने में सक्षम होने के कारण ही यह उपन्यास शिल्प व कला दोनों दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

****

उपसंहार

'यह पथ बन्धु' था के संदर्भ में किए गए संपूर्ण अध्ययन को यदि हम निष्कर्ष रूप में देखें तो पाते है कि आलोच्य उपन्यास नरेश मेहता के अन्य उपन्यासों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह उपन्यास अपने युग के क्रोड़ में तो विकसित हुआ ही है साथ ही कथानायक की यायावरी जिंदगी के अंतर्गत यह समाज का दस्तावेज़ भी है ।

इसका कलेवर पारिवारिक विघटन की परिस्थितियों एवं परिणामों से निर्मित हुआ है और यह उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर युगीन भारतीय परिवेश के विघटनात्मक परिप्रेक्ष्य को व्यापक रूप से चित्रित करता है । श्रीधर जैसे 'साधारण व्यक्ति' के साधारण जीवन की घटनाओं से इस उपन्यास की कथा विकसित हुई है । स्वतंत्रता पश्चात् साहित्य में जिस 'लघु मानव' की प्रतिष्ठा हुई थी श्रीधर उसी का प्रतिरूप है । लेखक के अनुसार ''यह एक निपट साधारण जन की दूब गाथा है'', जो हर बार परिस्थितियों द्वारा रौंदे जाने पर पुनः उठने का प्रयास करता है ।

इस उपन्यास में अनास्था और आस्था, संत्रास और विश्वास, परंपरा और प्रगति, युद्ध और प्रेम के द्वन्द्व से उपजी संवेदनशीलता का मार्मिक चित्रण हुआ है । इसके सभी पात्र तमाम यंत्रणाओं के बीच भी अपनी संवेदना को सुरक्षित रखते है, निरंतर घात-प्रतिघात झेलकर भी अदम्य जिजीविषा का परिचय देते है । वे अपनी आस्था को निःशेष नहीं होने देते तभी मृत प्राय अवस्था में भी वे पाठकों की संवेदना और सहानुभूति को उद्वेलित करते है ।

परिवेश व्यक्ति के जीवन को व्यापक रूप से संचालित करता है । विघटन के परिप्रेक्ष्य में, सामाजिक स्तर पर नैतिक मूल्यों का ह्रास और

राजनैतिक स्तर पर मूल्यों की अवमानना के परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार और अवसरवादिता के बीच धारा श्रीधर जैसा निरीह व्यक्ति अपने को अकेला ही महसूस कर सकता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समूह से कट कर वह नहीं जी सकता। श्रीधर के विषय में उल्लेखनीय यह है कि अलगाव की स्थिति में भी उसके व्यक्तित्व के अदृश्य सूत्र उसे समाज से जोड़े रखते हैं, तभी वह अपनी संघर्ष धारा को अंत तक पकड़े रहता है। वह एक साधारण व्यक्ति है और साधारण व्यक्ति संघर्ष ही कर सकता है। जब तक वह संघर्ष करता है तभी तक वह जीवित है और तभी तक उसका अस्तित्व है। जिस प्रकार प्रेमचन्द का 'होरी' अपनी त्रासदी से मानवीय स्तर पर एक लड़ाई जारी रखने की प्रेरणा देता है उसी प्रकार श्रीधर अपने जीवन की त्रासदी द्वारा संघर्ष को अंत तक प्रवाहित रखता है और समस्त असफलताओं और पराजय के बावजूद अदम्य जिजीविषा का परिचय देता है।

इस उपन्यास में व्यक्ति एवं परिवेश के संघात को गहराई के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसमें चित्रित यथार्थ वर्तमान युग में साधारण व्यक्ति के यथार्थ से मेल खाता है। श्रीधर के जीवन में असफलताओं का अनवरत् सिलसिला उसके जीवन के कटु यथार्थ को जैसे जैसे अनावृत करता है, यथार्थ का बोध उतनी ही तीव्रता से उसके जीवन में पसरने लगता है।

श्रीधर के माध्यम से लेखक ने यह सिद्ध किया है कि वर्तमान युग में साधनहीन व्यक्ति के आदर्श शक्ति नहीं दिखाता है।'' उनके अनुसार ''यह उपन्यास मनुष्य के सद्रूप के पराजय की गाथा है।'' स्पष्ट है कि स्वतंत्रता पश्चात व्यापक स्तर पर होने वाले परिवर्तन के कारण मनुष्य इतना स्वार्थी हो गया है कि उसके जीवन में आदर्शों एवं मूल्यों का कोई महत्व नहीं रहा। अपनी इसी आदर्शवादिता के कारण श्रीधर अपने भाइयों की अपेक्षा

वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर असफल रहा । किंतु भौतिक दृष्टि से असफल चरित्र होते हुए भी सार्थकता की दृष्टि से वह एक सफल चरित्र है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मानवीय मूल्यों एवं आदर्शों को सुरक्षित रखता है ।

शिल्प के स्तर पर 'यह उपन्यास अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों पर एक ऐसा आंतरिक सामंजस्य है जो हिन्दी कथा साहित्य में नये आयाम का सूचक है ।'[1] इसके शीर्षक की सार्थकता को अंतिम अध्याय में उपन्यास नायक श्रीधर और उसकी पत्नी सरस्वती के संदर्भ में स्पष्ट कर दिया गया है । शीर्षक में 'पथ' शब्द सांकेतिक रूप में जीवन के अर्थ में ग्रहण किया गया है । इसके शिल्प में जहां एक ओर छायावादी मसृणता है वहीं दूसरी ओर नई कविता की सी सहजता है । लोकोक्ति, लोकगीतों, लोककथनों आदि के प्रयोग लोक जीवन के वातावरण को साकार करते हैं । शिल्प के स्तर पर यथार्थ और प्रयोग का प्रतिसहयोग इसे विश्वसनीयता प्रदान करता है ।

आलोच्य उपन्यास की तुलना धूमकेतु : एक श्रुति से कुछ संदर्भों में की जा सकती है । मेहता जी के ये दोनों उपन्यास एक व्यक्ति की कथा होते हुए जीवन के विविध आयामों को उद्घाटित करते हैं । दोनों उपन्यासों की कथा स्मृतिवलोकन द्वारा विकसित हुई है । दोनों के नायक किशोरावस्था में इन्दु व कावेरी जैसी नारी पात्रों से प्रभावित होने के कारण अत्यंत भावुक व संवेदनशील हैं । दोनों अपनी पत्नियों को छोड़ देते हैं, यद्यपि श्रीधर

---

1. अधूरे साक्षात्कार : नेमिचन्द्र जैन, पृ0

अंत में लौट आते है लेकिन इतने अंतराल बाद उनका लौटना कोई महत्व नहीं रखता क्योंकि उनकी पत्नी उन्हें सब जिम्मेदारियों से मुक्त कर देती है। इन उपन्यासों में एक अन्य समानता इसके विभाजन को लेकर है। दोनों उपन्यास चार खंडों में लिखे गए है। धूमकेतु : एक श्रुति का विभाजन संगीत के आधार पर किया गया है। उसमें 'विस्तार' 'आलाप' 'सम' एवं 'समापन' चार खंड है। 'यह पथ बन्धु था' भी 'सूत्र पथ' 'पूर्व पथ', शेष पथ व 'उत्तर पथ' में विभाजित है।

आलोच्य उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' के इस विस्तृत अध्ययन से स्पष्ट है कि यह एक ऐसा उपन्यास है जिसमें एक ओर प्रेमानुभूतियों की शीतल सरिता प्रवाहित हो रही है तो दूसरी ओर क्रांति की चिंगारी सुलग रही है। इसमें जहाँ एक ओर परंपरा एवं रूढ़ियों के विध्वंस का स्वर है वहीं दूसरी ओर नवीन समाज के निर्माण का संकल्प है। इसमें मानव प्रेम है, देश प्रेम है, भागवत प्रेम है। अपनी इसी बहुआयामिता के कारण यह अपने युग का दस्तावेज है। उल्लेखनीय है कि मूल्य संक्रमण, मूल्यहीनता, मूल्यशून्यता और विघटन के परिप्रेक्ष्य में श्रीधर जैसे साधारण व्यक्ति की निरीहता, सरो की सहनशीलता, इन्दु की विवशता और मालिनी की परवशता के भावात्मक चित्रण के बावजूद लेखक की संयमशीलता के कारण यह मात्र भावुकता का आख्यान न होकर यथार्थ की गरिमा से युक्त एक उज्जवल कृति है। भविष्य में अपनी इस कृति के महत्व के प्रति लेखक अत्यंत आशावान है और उनका मानना है कि इतने वर्षों बाद "जिस प्रकार गांधी पुनः चिंतन और दिशा के केंद्र बिंदु हो गए है, उसी प्रकार श्रीधर जैसे पात्र या चरित्र भविष्य में केंद्रियता प्राप्त करेंगे। ज्यादा न कह कर इस रचना के विषय में इतना कह देना पर्याप्त है कि विगत 28 वर्षों के पश्चात् आज भी समकालीन युग की विडम्बना को रेखांकित करने में समर्थ होने के कारण यह एक सफल व सार्थक उपन्यास है।

xxxxxx

आधुनिक हिन्दी उपन्यास ' मैं लेखक' एक रचना की प्रतिरचना में व्यक्त नरेश मेहता के विचार।

संदर्भ एवं सहायक ग्रंथ

1. सर्जना और संदर्भ	अज्ञेय, नेशनल पबलिशिंग हाउस
2. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, राजकमल एण्ड संस
3. आधुनिक साहित्य	डा० नन्ददुलारे वाजपेयी, भारतीय भंडार इलाहाबाद
4. नया साहित्य नए प्रश्न	- वही -
5. हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य	स० वा० अज्ञेय, राधाकृष्ण प्रकाशन
6. इतिहास और आलोचना	नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन
7. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका	मैनेजर पाण्डेय, हरियाणा साहित्य अकादमी
8. प्रयोगवाद और नई कविता	शंभुनाथ सिंह
9. अधूरे साक्षात्कार	नेमिचन्द्र जैन, अक्षर प्रकाशन
10. हिन्दी उपन्यास : उत्तरशति की उपलब्धियाँ	डा० विवेकी राय, राजीव प्रकाशन
11. आधुनिकता और सृजनशीलता	रघुवंश, मैकमिलन इण्डिया प्रकाशन
12. विवेक के रंग	देवीशंकर अवस्थी, ज्ञानपीठ प्रकाशन
13. हिन्दी नवलेखन: रामस्वरूप चतुर्वेदी	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
14. आधुनिक हिन्दी उपन्यास	भीष्म साहनी, रामजी मिश्र, भगवती प्रसाद राजकमल प्रकाशन
15. यथार्थ यथास्थिति नहीं	रघुबीर सहाय
16. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	डा० त्रिभुवन सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी
17. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन	डा० गणेशन, राजकमल एण्ड संस

18. आज का हिन्दी उपन्यास — इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन
19. साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य — रघुवंश, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
20. आधुनिक हिन्दी उपन्यास की भूमिका — नरेन्द्र मोहन
21. नई समीक्षा नये संदर्भ — डा० नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस
22. साहित्य का समाज शास्त्रीय अध्ययन — सं० निर्मला जैन, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय
23. आधुनिक साहित्य मूल्य और मूल्यांकन — निर्मला जैन, राजकमल प्रकाशन
24. आज का हिन्दी साहित्य: संवेदना एवं दृष्टि — डा० रामदरश मिश्र
25. नए उपन्यास की भूमिका — देवेन्द्र इस्सर
26. आधुनिक हिन्दी उपन्यास — चन्द्रकांत बांदिवेडकर
27. हिन्दी उपन्यास — डा० सुधमा धवन, राजकमल प्रकाशन
28. समकालीन हिन्दी उपन्यास: कथ्य विश्लेषण — डा० प्रेमकुमार, इन्दु प्रकाशन
29. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास — डा० पारकांत देसाई, सूर्य प्रकाशन
30. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में मानव मूल्य और उपलब्धियां — डा० भगीरथ बड़ोले, स्मृति प्रकाशन
31. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन — डा० राम स्वरूप अरोड़ा, निर्माण प्रकाशन
32. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियां — डा० शशिभूषण सिंहल, विनोद प्रकाशन
33. समसामयिक हिन्दी साहित्य — बच्चन, नगेन्द्र, साहित्य अकादमी प्रकाशन
34. हिन्दी उपन्यास के शिखर — हेमराज 'निर्मम', मंथन प्रकाशन
35. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्प में विधि का विकास (1947-65) — डा० दुबे, नटराज प्रकाशन
36. उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान — डा० दंगल झल्टे, वाणी प्रकाशन
37. हिन्दी उपन्यास: तीन दशक — डा० राजेन्द्र प्रताप, अभिनव प्रकाशन

38. आदर्श और यथार्थ — पुरुषोत्तम लाल, दूसरा संस्करण

39. हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा — डा० मक्खन लाल शर्मा

40. हिन्दी उपन्यास में महाकाव्यात्मक चेतना — डा० सुषमा गुप्ता, सूर्य प्रकाशन

41. हिन्दी साहित्य में अस्तित्ववाद — डा० श्याम सुन्दर मिश्र

42. साहित्य और अलगाव दर्शन — डा० वैजनाथ सिंहल

43. अँधेरे में - मुक्तिबोध — राम

44. उपन्यास सिद्धान्त

45. नये प्रतिमान पुराने निकष — लक्ष्मी कांत वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

46. आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन — डा० विद्याशंकर राय, सारस्वती प्रकाशन

47. हिन्दी उपन्यास कला — डा० राम लखन शुक्ल, सन्मार्ग प्रकाशन

48.

अंग्रेजी पुस्तकें

1. **Existentialism : For & Against** - **Paul Roubiczek**
2. **Adpects of novel** - **E.M. Foster**
3. **Novel** - **George Lucas**
4. **Chracter and the Novel** - **W.J. Harvey**
5. **Man Alone 'Alienation in Modern Society'** - ROBERT MACBER.
6. **Culture** **Raymond Williams.**
7. **Science of Ethics** **Lessly Stephens**

पत्रिका

1. भाषा / विश्व हिन्दी सम्मेलन अंक (त्रैमासिक) — केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा तथा संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार

2. 'आलोचना' - अंक 13 उपन्यास विशेषांक, अंक 35. त्रैमासिक. दिल्ली
3. 'माध्यम' अगस्त 1964. ; मासिक, इलाहाबाद
4. 'कल्पना' - 1951.
5. समालोचक - 1959 ; मासिक, आगरा

1-1-1